

# जिनभाषित

मार्च 2002

सहस्र स्तम्भ मंदिर मूडबिद्री



- व्रतः मानवजीवन की शोभा
- आहारदान की विसंगतियाँ

वीर निर्वाण सं. 2529

फाल्गुन, वि. सं. 2058

# जिनभाषित

## मासिक

मार्च 2002

वर्ष 1, अंक 2

### सम्पादक

प्रो. रतनचन्द्र जैन

### कार्यालय

137, आराधना नगर,  
भोपाल- 462003 म.प्र.  
फोन नं. 0755-776666

### सहयोगी सम्पादक

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया  
पं. रतनलाल बैनाड़ा  
डॉ. शीतलचन्द्र जैन  
डॉ. श्रेयांस कुमार जैन  
प्रो. वृषभ प्रसाद जैन  
डॉ. सुरेन्द्र जैन 'भारती'

### शिरोमणि संरक्षक

श्री रतनलाल कँवरीलाल पाटनी  
(मे. आर.के. मार्बल्स लि.)  
किशनगढ़ (राज.)  
श्री गणेश राणा, जयपुर

### द्रव्य-औदार्य

श्री अशोक पाटनी  
(मे. आर.के. मार्बल्स लि.)  
किशनगढ़ (राज.)

### प्रकाशक

सर्वोदय जैन विद्यापीठ  
1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी,  
आगरा- 282002 (उ.प्र.)  
फोन : 0562-351428, 352278

### सदस्यता शुल्क

शिरोमणि संरक्षक	5,00,000 रु.
परम संरक्षक	51,000 रु.
संरक्षक	5,000 रु.
आजीवन	500 रु.
वार्षिक	100 रु.
एक प्रति	10 रु.

सदस्यता शुल्क प्रकाशक को भेजें।

### अन्तस्तत्त्व

पृष्ठ

◆ आपके पत्र : धन्यवाद	1
◆ सम्पादकीय : पाठकों से निवेदन	3
◆ प्रवचन : ममकार और अहंकार ...आचार्य विद्यासागर जी	4
◆ लेख	
● मुनि श्री समतासागरकृत भक्तामर दोहानुवाद	प्रो. रतनचन्द्र जैन 6
● व्रत : मानवजीवन की शोभा	: प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन 9
● द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्ग	: स्व. पं. लाल बहादुर शास्त्री 11
● आहारदान की विसंगतियाँ	: ब्र. महेश जैन 13
● आर्यिका नवधाभक्ति प्रकरण	: पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया 16
● सुगन्धाकरमस्ति सदा हि शास्त्रम्	: वृषभ प्रसाद जैन 18
● राष्ट्रपति पुरस्कार...	: प्रो. राजाराम जैन 21
● पशु रक्षा	: श्रीमती सुशीला पाटनी 24
● प्रश्न आस्था का	: मणिक चन्द्र जैन पाटनी 25
◆ जिज्ञासा-समाधान	: पं. रतनलाल बैनाड़ा 26
◆ व्यंग्य : पड़ौसी पुराण	: शिखरचन्द्र जैन 28
◆ बालवार्ता : विपत्ति में मित्र का...	: डॉ. सुरेन्द्र 'भारती' 30
◆ कविताएँ	
● ज्यों-ज्यों उमरें बढ़ने लगतीं	: अशोक शर्मा 12
● राजुल गीत	: श्रीपाल जैन 'दिवा' 15
● चिन्ता नहीं चिन्तन करो	: पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश' 29
● जिन पर लिखा सहारों के घर	: ऋषभ समैया 'जलज' 29
● सही पुरुषार्थ	: आचार्य विद्यासागरजी आवरण 3
● मोती	: सरोज कुमार आवरण 3
◆ समाचार	5,10, 17,23,31,32

# आपके पत्र, धन्यवाद : सुझाव शिरोधार्य

'जिनभाषित' में ऐसी उच्चस्तरीय सामग्री आप प्रकाशित करेंगे, ऐसा हमने कभी नहीं सोचा था। यह पत्रिका सचमुच ही दिग्म्बर जैनधर्म एवं समाज का प्रतिबिम्ब बहुत ही आकर्षक एवं सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करने की दिशा में अच्छा कदम है।

आपके द्वारा लिखित सम्पादकीय, बाहरी आवरण पृष्ठ एवं आचार्य श्री विद्यासागर के ससंघ समाचार व प्रवचन इसकी उपयोगिता को और बढ़ा देते हैं। सच पूछा जाये तो ऐसी पत्रिका की आवश्यकता नितान्त अनुभव की जा रही थी जो कि समसामयिक जरूरतों के साथ-साथ आगमसम्मत सिद्धान्तों पर आधारित हो और हमारे पूज्य गुरुवरों के आशीर्वाद व मार्गदर्शन को इसमें समाहित करती हो।

मनीष चौधरी

1244, मनिहारों का रास्ता  
किशनपाल बाजार जयपुर (म.प्र.)

'जिनभाषित' पत्रिका के अप्रैल-जून 2001 के दो अङ्क प्राप्त हुए हैं। पत्रिका 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' अनुभव हुई है। वैज्ञानिक और बुद्धियुग में आपके सम्पादकीय लेख प्रशंसनीय व उपयोगी हैं। व्यवहार सम्यग्दर्शन की क्रियान्विति में यह पत्रिका प्रेरक और सहयोगी होगी।

अप्रैल 2001 के अङ्क में डॉ. पन्नालालजी व वर्णीजी तथा चिरोंजाबाई के उल्लेखों को देखकर मुझे उत्साह मिला है कि इस चिंतन प्रसार के चिंतक अभी जाग्रत हैं।

पं. प्रेमचन्द्र जैन

C/o सुरेश मिल, डीमापुर(नागालैंड)- 797112

'जिनभाषित' पत्रिका के तीन अङ्क प्राप्त हुए, प्रत्येक अङ्क पिछले अङ्क की तुलना में उत्तरोत्तर विचारोत्तेजक एवं आकर्षक व पठनीय सामग्रीयुक्त लगा। जून के अङ्क में 108 मुनि प्रमाणसागर जी का लेख पढ़ा, उनके सद्विचार यथार्थ के धरातल पर अमिट सत्य हैं कि जब महीने के अन्त में पत्रिका आती है तब ऐसा महसूस होता है कि मैं जिनवाणी की चिट्ठी आई है। पत्रिका का सम्पादन, आलेख, सामग्री सराहनीय हैं। मैं पत्रिका की उत्तरोत्तर प्रगति की कामना करता हूँ।

माँगीलाल 'मृगेश'  
कालापील (म.प्र.)

दिसम्बर 2001 एवं जनवरी 2002 के अङ्क प्राप्त हुए। एतदर्थ धन्यवाद। दोनों अङ्कों में प्रकाशित सम्पादकीय अपने-अपने विषयों पर शोधपरक लेख हैं जो जनसामान्य की भ्रांतियों और मिथ्याधारणाओं के समाधानार्थ प्रकाशस्तंभ तुल्य हैं। आपकी पैनी दृष्टि ने दिसम्बर के अंक में प्रकाशित 'अर्यिका माता पूज्य, मुनि परमपूज्य' सम्पादकीय में सम्मानपूजा और भक्तिपूजा में भेद दर्शाते हुए अर्घ्य और वंदना-स्तवन के अंतर को स्पष्ट किया है, वह सर्वथा संगत है।

डॉ. शीतलप्रसाद जी ने जैनदर्शन और न्याय के प्रकाण्ड विद्वान आ. डॉ. दरबारीलाल जी कोठिया के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर संक्षिप्त लेख में महत्त्वपूर्ण सामग्री दी है। इसी प्रकार डॉ. श्रीरंजन सूरिदेव का "जैन संस्कृति में पर्यावरण चेतना" नामक लेख में जैन संस्कृति विषयक 'स्वतंत्र वनस्पतिशास्त्र' से परिचय कराया है। अनेक आगमग्रन्थों के उद्धरणों द्वारा विषय को अच्छी तरह सुस्पष्ट किया गया है। दर्शन और संस्कृति को विज्ञान की कसौटी पर कस कर देखना स्तुत्य है।

पं. रतनलाल बैनाड़ा का शंका-समाधान स्तंभ तो अत्यन्त उपयोगी संदर्भ ग्रन्थ का काम कर रहा है।

जनवरी 2002 के अङ्क का सम्पादकीय 'शासन देवता सम्मान्य, पंच परमेष्ठी उपास्य' तो त्रैकालिक सामयिक है। प्रतिष्ठा ग्रन्थों में विध्वविनाशनार्थ शासन देवी-देवताओं के पूजन विधान की व्यवस्था या उन्हें ॐ ह्रीं आदि शब्दोच्चार द्वारा अर्घ्य समर्पित करने की व्यवस्था ने जन सामान्य में कुछ मिथ्याधारणाएँ उत्पन्न की हैं कि वे भी इन देवी-देवताओं/यक्ष-यक्षणियों की पूजा अर्चना से उन्हें प्रसन्न कर अनेक लौकिक/भौतिक लाभ प्राप्त कर सकते हैं।

सम्पादकीय में आपने यह सुस्पष्ट कर दिया है कि सुख-समृद्धि किन्हीं देवी-देवताओं की भक्ति से नहीं, अपितु पंच-परमेष्ठी की भक्ति से होने वाले शुभ कर्मों के बन्ध से ही संभव है। प्रकारान्तर से कार्तिकेयानुप्रेक्षा में भी 'परस्परोग्रहोजीवानाम्' की व्याख्या करते हुए कहा गया है-

जीवा विदु जीवाणं, उवयारं कुणदि सव्व पच्चक्खं।  
तथ्य वि पहाण-हेऊ पुण्णं च णियमेणं ॥210

अर्थात् जीव भी जीवों पर उपकार करते हैं, यह सबके प्रत्यक्ष ही है, किन्तु उसमें भी नियम से पुण्य और पापकर्म कारण हैं। पुण्य और पापकर्म हमारे शुभ-अशुभ भावों पर निर्भर है। अतः मुख्यतः पंचपरमेष्ठी के आराधन, अर्चना और पूजा से ही शुभ कर्म बँधेंगे, जिनसे पारलौकिक के साथ-साथ लौकिक हित भी सधेंगे।

भौतिक सुख-सुविधाओं का स्रोत शासन देवी-देवताओं को मानेंगे तो उसका परिणाम जैन दर्शन के प्राणभूत कर्म सिद्धान्त पर अविश्वास करना होगा। अनेक आगमग्रन्थों के उद्धरणों द्वारा आपने सिद्ध कर दिया है कि शासन देवी-देवताओं की पूजा या अर्घ्य समर्पण पंचपरमेष्ठी या जिनेन्द्रदेव के पूजा विधान के समतुल्य नहीं है। वे साधर्मी होने से हमारे सम्मान के पात्र हैं, जिनके सम्मानार्थ हम उपहार स्वरूप पूजाद्रव्य तो समर्पित कर सकते हैं, किन्तु पूजा द्रव्य/अर्घ्य समर्पण के साथ-साथ स्तुति, वंदना उनके गुण-गरिमा गायन आदि के अधिकारी तो मात्र जिनेन्द्र देव या पंचपरमेष्ठी ही हैं।

इसी अङ्क में ऐलक श्री निर्भयसागर जी का लेख 'दही में बैक्टीरिया (जीवाणु) हैं या नहीं' पूर्णतः विज्ञानसम्मत लेख है। जो लोग दूध-दही में जीवाणु बताकर जैन श्रावकों, आर्यिकाओं और मुनियों की आलोचना करते हैं, उनको यह तर्कयुक्त लेख अपनी मान्यताओं, दुराग्रह और हठधर्मिता छोड़ने को तैयार करेगा। दूसरी ओर जैन समाज को दूध-दही का हिंसारहित उपयोग करने की विधि से परिचित करारकर उनका प्रमाद दूर करने में सहायक होगा। इसी प्रकार ब्र. मोतीलालजी के मोर पंखों के सम्बन्ध में लेख ने प्रचलित भ्रांतियों का भली प्रकार निवारण किया है। डॉ. वृषभप्रसाद जैन ने अत्यन्त संक्षेप में ज्ञान की महिमा मण्डित कर गागर में सागर भर दिया है।

निष्कर्षतः जिनभाषित के सभी लेख/सामग्री अत्यन्त उपयोगी और सर्वत्र भ्रांतियों, दुराग्रहों और एकान्तवादी दृष्टिकोण को परिमार्जित करने में सहायक है।

बहुचर्चित सामयिक विषयसामग्री का चयन करके इतनी उच्च कोटि की पत्रिका प्रकाशित करने के लिए आपको कोटिशः बधाई।

डॉ. पी.सी.जैन  
प्रिंसीपल-जे.एन.कॉलेज ऑफ एजुकेशन  
गंजबसौदा (म.प्र.)

आपकी पत्रिका के अङ्क समय पर प्रकाशित होकर प्राप्त हो रहे हैं। स्वस्थ विचारों से ओत-प्रोत पत्रिका का समाज में अभाव खल रहा था। आपके तथा सम्पादक मण्डल के सतत प्रयासों और जागरूकता से एक बड़ी कमी दूर हुई है।

पत्रिका के पढ़ने से अब लगता है कि जैन समाज में धर्म के साथ-साथ आडम्बर के प्रदर्शन से धार्मिक बंधुओं की धर्म के प्रति आस्था और श्रद्धा गिर रही थी, उस पर एक अंकुश-सा लगता प्रतीत हो रहा है।

आप निरन्तर अपने स्पष्ट विचारों को निडरता के साथ समाज के समक्ष प्रस्तुत करते रहें, हालाँकि यह कार्य कठिन है; लेकिन धर्म के स्वरूप को बदलने से बचाने

का दूसरा कोई माध्यम नहीं है। धार्मिक क्रियाओं में आतंकवाद को पनाह देना भी पाप की श्रेणी में आता है। स्वस्थ लेखन के लिए बधाई तथा हार्दिक शुभकामना।

सतीश चन्द्र जैन नायक  
30/46, चुंगी स्कूल के सामने  
छीपीटोला, आगरा (उ.प्र.)

मुझे जिनभाषित पत्रिका के 4-5 अङ्क पढ़ने को मिले; मन को ऐसा लगा कि वास्तव में और पत्रिकाओं के मुकाबले इसमें ज्ञानवर्धक लेख, सम्पादकीय टिप्पणी, प्रमाणसहित पढ़ने को मिली।

आपके सम्पादकीय लेख आज के भटके हुए समाज के लिए सफल पथप्रदर्शक हैं। जनवरी अंक में "शासन देवता सम्मान्य, पंचपरमेष्ठी उपास्य" लेख प्रमाणसहित पढ़ने को मिला, पढ़कर मन को संतुष्टि हुई।

"दही में जीवाणु हैं या नहीं" लेख ऐलक श्री निर्भय सागर जी का पढ़ने को मिला, जिस तरह से समझाया गया वह अत्याधिक प्रभावशाली है।

प्रमोद कुमार जैन  
अध्यक्ष- जैन नवयुवक मण्डल  
फतेहपुर-शंखावटी (राजस्थान)

'जिनभाषित' में प्रकाशित लेखों के माध्यम से आपने परमपूज्य विद्यासागर जी के वृहद् व्यक्तित्व के विभिन्न आयामों को उद्घाटित किया है। मैं गत 25 वर्षों से सतत अनुभव कर रहा हूँ कि उनका व्यक्तित्व सद्भाव एवं मंगलकामनाओं से ओतप्रोत है। जब वे कायोत्सर्ग करते हैं, प्रतिक्रमण करते हैं, सामायिक करते हैं तब उनके व्यक्तित्व में अद्भुत शक्ति और ऊर्जा का संचार होता है। उनके प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष आशीर्वाद से सभी जीवों में गुणात्मक परिवर्तन हो जाता है। नैनागिरी में मेरी माताजी ने उनकी चरण रज से पवित्र जल (गंधोदक) को बीजों पर छिड़क कर सिद्ध किया है कि ऐसे बीज शीघ्र ही अंकुरित हो जाते हैं और पौधे अधिक स्वस्थ और वृद्धिगत हो जाते हैं।

सुरेश जैन आई.ए.एस.  
30, निशात कालोनी भोपाल (म.प्र.)

दिखाने के हैं सब ये दुनिया के मेले ।  
भरी बज़्म में हम रहे हैं अकेले ॥

उग्र पानी है, तो फिर मौत से डरना कैसा?।  
इक न इक रोज ये हंगामा हुआ रक्खा है ॥

## पाठकों से निवेदन

आपने 'जिनभाषित' को बहुत सराहा है। इसकी वार्षिक और आजीवन सदस्यता ग्रहण की है। इसके लिए हम आपके आभारी हैं। हम चाहते हैं कि आप अपने सम्बन्धियों, पड़ोसियों और इष्टमित्रों को भी इसकी सदस्यता ग्रहण करायें।

यह जिनवाणी माँ की चिट्ठी है, जिनवाणी माँ का दूरदर्शन है, जिनवाणी माँ की पाठशाला है, जिनवाणी माँ का विश्वविद्यालय है, जो हर माह आपके घर ज्ञान और सद्विचार की सौगात लेकर पहुँचता है। यह मात्र एक अखबार नहीं है। यह बहुमुखी साहित्य का कोश है। इसके माध्यम से जो ज्ञान और उदात्त विचार आपके घर के अतिथि बनेंगे, वे आपकी किशोर और युवा पीढ़ी में धार्मिक अभिरुचि, साहित्यिक अभिरुचि, वैज्ञानिक अभिरुचि एवं कलात्मक अभिरुचि का निर्माण करने में अमोघ मंत्र सिद्ध होंगे। ड्राइंग रूम की टेबल पर जब यह पत्रिका रखी हुई बार-बार दिखाई देगी, तो घर के बालक-बालिकाओं, युवा-युवतियों में कभी न कभी इसे छूने और उलटने-पलटने की इच्छा अवश्य उत्पन्न होगी और यही वह स्वर्णिम क्षण होगा, जब पत्रिका का कोई प्रवचन, कोई लेख, कोई गीत, कोई गजल, कोई कविता, कोई व्यंग्य, कोई आदर्शकथा, कोई सूक्ति उनकी नजर को खींच ले और उसमें व्यक्त उदात्त विचार मन में किसी नैतिक या धार्मिक संस्कार का बीज आरोपित कर दे। यह बिना उपदेश दिये, बिना डाँट-फटकार लगाये, बिना प्रताड़ित किये, बिना लाखों का खर्च किये, अपनी सन्तान में सम्यक् दृष्टिकोण, समीचीन जीवन दर्शन के विकास एवं उसे वांछनीय दिशा में मोड़ने का अनायास उपाय साबित होगा। क्योंकि उदात्त विचारों को मस्तिष्क में प्रवेश मिलना ही जीवन के परिवर्तन का मनोवैज्ञानिक हेतु है।

आज उदात्त विचारों को मस्तिष्क में पहुँचानेवाले साधन दुर्लभ हो गये हैं। कुत्सित विचारों का ही प्रसार विभिन्न वैज्ञानिक माध्यमों से चतुर्दिक् हो रहा है, और वैसी ही प्रवृत्तियाँ बालक-बालिकाओं में विकसित हो रही हैं। हम सबने टी.वी. के विभिन्न चैनलों के माध्यम से अपनी सन्तान के मस्तिष्क में कुविचार भरने की पुख्ता व्यवस्था कर रखी है।

इसके लिए हम मोटी रकम खर्च करते हैं। पचास-पचास हजार के टी.वी. सेट, वी.सी.आर. और म्यूज़िक सिस्टम खरीदते हैं। दो-दो सौ रुपये महीने कबिल का किराया देते हैं। इस तरह अपनी सन्तान के मस्तिष्क में भरने के लिए बड़े मँहगे दामों में कुविचार खरीदते हैं। 'जिनभाषित' पत्रिका द्वारा प्राप्त होने वाले सद्विचार तो कुविचारों की तुलना में बड़े सस्ते दामों में मिल रहे हैं।

'जिनभाषित' उच्चकोटि के व्यंग्य और व्यंजनाप्रधान श्रेष्ठ कविताओं के माध्यम से साहित्यिक अभिरुचि जगाने का उत्तम साधन है। यह सन्तों के आध्यात्मिक प्रवचनों, मनीषियों के शोधपूर्ण सैद्धान्तिक आलेखों और जिज्ञासाओं के समाधान द्वारा घर-बैठे स्वाध्याय का स्वर्णिम अवसर उपस्थित कर देता है। हर तरह से यह उपयोगी और आत्मोन्नायक है। 'जिनभाषित' के प्रचार-प्रसार हेतु हमें आपके बहुमूल्य सहयोग की लालसा है।

रतनचन्द्र जैन

# ममकार और अहंकार छोड़ने का नाम है दीक्षा

छपारा (म.प्र.), 19 जनवरी 2001, दीक्षा कल्याणक के दिन का प्रवचन

आचार्य श्री विद्यासागर जी

आपके सामने वैराग्य का दृश्य प्रदर्शित किया गया। एक वैभवशाली व्यक्तित्व अपने वैभव को वै-भव यानी भव का कारण समझकर पीठ दिखाकर चल दिया, यानी छोड़ कर चल दिया। या यह कहें कि उन्होंने उस बड़े वैभव को अपनी पीठ दिखा दी और आत्मवैभव को अपने सम्मुख रखकर उसको पाने के लिए अपने कदमों को बढ़ाया था। एक हम हैं एक छोटी सी कुटिया होती है, बरसात में टप-टप करती है, उसको छोड़ा नहीं जा रहा है। दिव्य वस्त्रों को अपनी शरीर पर धारण करने वाले आदिकुमार सब त्याग कर दिगम्बरत्व को स्वीकारने चले गये। हमारा एक वस्त्र होता है, जो पुराना हो गया है, उसको सिल-सिल कर पहनते रहते हैं। एक पुराने कपड़े को नहीं छोड़ा जाता है। आखिर यह सब क्यों छोड़ा उन्होंने? इसलिए छोड़ा कि उन्हें जो बाहरी वैभव मिला था उस वैभव में सारभूत तत्त्व की प्राप्ति नहीं हुई। आत्म वैभव जो सारभूत तत्त्व है, वह उन्हें प्राप्त नहीं हुआ इसलिए उस बाहरी धन संपदारूपी वैभव को असारभूत समझकर भवन से वन को चले गये। अब वन में बैठकर समस्त आरंभ, परिग्रह से मुक्त होकर अपने वैभव को देख रहे हैं, आत्म वैभव का रस ले रहे हैं। इस आत्म वैभव को पीने के लिए संसार के रिश्ते-नातों को तोड़कर एक अपने आत्मा से नाता जोड़ लिया।

इस संसार के भोगों को कितनी बार भोगा और कितनी बार इन भोगों के ही हम भोग बनकर रह गये हैं। अनादिकाल से हम इन इन्द्रियों के विषयों के कारण इस संसार के चक्र में फँसे हैं। यदि हम चाहें तो रागमय वातावरण में भी विरागमय दृष्टि बना सकते हैं जैसे अभी आपने देखा होगा कि नीलांजना का नृत्य तो सबके लिए रागमय दृष्टि बनाने के लिए कारण बना था, लेकिन आदिकुमार के लिये वह नृत्य विराग का कारण बन गया। संसार की असारता का भान उनको हो गया और चल दिये इस संसार को छोड़कर और आज उन्होंने दीक्षा ले ली है। उन्होंने जब संसार को असार जाना तो वे किसी से बोले नहीं। अपने पुत्र भरत को राज्य का भार सौंप दिया और वन की ओर चले गये। उन्होंने सोचा होगा कि जब सब संसार असारमय है, तो हम किसके साथ बोलें जो बाहर दिख रहा है वह मैं नहीं हूँ और जो मैं हूँ वह दिखता नहीं है, इसलिए बोलूँ तो किससे बोलूँ? जिसकी तत्त्व की ओर दृष्टि रहती है, वह बाहर की ओर नहीं देखता। आज तत्त्व दृष्टि नहीं होने के कारण दुनिया की ओर दृष्टि जा रही है। जैसे आपने पढ़ा सुना होगा, थोड़ी सी धरती के कारण आज भारत और पाकिस्तान की क्या दशा है? दोनों तरफ जनहानि और धन हानि हो रही है।

हमारे तीर्थंकर स्वयं दीक्षित होते हैं, वे स्वयंभू होते हैं। उन्हें कोई दीक्षा नहीं देता है, न ही वे किसी से दीक्षा लेते हैं और वे किसी को दीक्षा नहीं देते हैं, कोई ले लेता है तो ठीक है, नहीं ले तो भी ठीक है। तीर्थंकर का जीवन ऐसा जीवन होता है जिसके बारे में हम कुछ नहीं कह सकते हैं। भगवान के पंचकल्याणक स्वर्गों के देव सौधर्म इन्द्र के नेतृत्व में बड़े महोत्सव के रूप में मनाते हैं, लेकिन तीर्थंकर भगवान उसके उस कार्य से प्रभावित नहीं होते हैं। उनका वैराग्य चरमोत्कर्ष के लिए होता है, उन्हें जब वैराग्य होता है तो कोई रोक नहीं सकता। जैसे जो अभी माता-पिता बने थे वे हम से कह रहे थे-महाराज आदिकुमार को रोको, ये सब मोह के वशीभूत होकर कह रहे थे। लेकिन आदिकुमार का मोह संसार से नहीं रहा, इसलिये उन्हें अब कोई नहीं रोक सकता है। संसार की दशा को बताने वाली मुनि की मुद्रा है जो संसार की सारता और असारता को बताती है। इस वीतराग मुद्रा को देखकर बच्चा भी समझ जाता है। यह मुद्रा किसी को अभिशाप नहीं देती, अशीर्वाद भी तीर्थंकर भगवान नहीं देते हैं, उनकी दृष्टि नासाग्र होती है। तीर्थंकर भगवान बिहार करते हैं, तो उस समय भी नासाग्र दृष्टि रहती है, वे किसी की तरफ नहीं देखते हैं, पर दुनिया उनको देखती है। तीर्थंकर भगवान की अद्भुत चर्या है। तो यह दुनिया भी बड़ी अद्भुत है। इसके बारे में किसी ने कहा-

दुनिया दुरंगी, मरवाये सराये।

कहीं खैर खूबी, कहीं हाय-हाय।।

यह दुनियाँ का सार है, इसमें कहीं पर भी सारभूत बात नहीं है। सारभूत यदि है तो हमारी आत्मा में है। आप लोगों ने देखा होगा बच्चों को वह बहुत अच्छी लगती है, उसे बंबई की मिठाई कहते हैं, वह देखने में तो बहुत अच्छी और बड़ी दिखती है, लेकिन मुँह में डालते ही वह पानी-पानी हो जाती है, फिर भी उसका आकर्षण बना रहता है, वैसी ही दशा आप लोगों की है। सब जानते हैं दुनिया में शान्ति नहीं है, फिर भी आप लोग इस संसार के असारमय वातावरण में रचे पचे हैं। यह सब दशा मोह के कारण है। भगवान तो वन चले गये, इसीलिये वे भगवान बन गये। इतना सारा वैभव सब कुछ छोड़कर गये हैं। थोड़ा नहीं, बहुत छोड़ा है। एक आप हैं फटे कपड़ों को सिल सिल कर पहनते ही जा रहे हैं, छोड़ने की बात ही नहीं है। यदि थोड़ा सा कुछ त्याग किया तो दुनिया को दिखाना चाहते हैं, अपने त्याग को। आत्मतत्त्व को देखने की चाह रखने वाला दुनिया को दिखाने की चाह नहीं रखता है। मुनिव्रत को धारण करना बहुत बड़ा कार्य है उसे असिधार व्रत भी कहा

जाता है, यह व्रत निजानुभव का हेतु है जिसकी दृष्टि इस व्रत की है और सतत भावना इसको प्राप्त करने की होती है, वही व्रत को प्राप्त कर सकता है। ममकार और अहंकार को छोड़कर जो अपने आप को देखता है, वही इस दीक्षा को ले सकता है या यह कहें ममकार और अहंकार को छोड़ने का नाम है दीक्षा, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। अभी किसी ने कहा कि सारभूत प्रवचन करेंगे। तो हमें समझना है, सारभूत क्या है? तो असारभूत को छोड़ देना ही सारभूत बात है। अब देखना क्या है? सारभूत तत्त्व को देखना है, यह संसार तो असारभूत है क्योंकि कहा गया है-

“जो संसार विषै सुख होता, तीर्थकर क्यों त्यागे”

इस संसार को असारमय समझकर वृषभनाथ भगवान सब छोड़ कर वन चले गये। हम तीर्थकर के बारे में सोचें। एक कथन है कि तीर्थकर भगवान को जन्म से अवधिज्ञान होता है, लेकिन वह अवधिज्ञान देशावधिज्ञान होता है। लेकिन जैसे दीक्षा लेते हैं वह ज्ञान परमावधि के रूप में हो जाता है। आज के इस प्रसंग से हमें समझना है कि आखिर कब तक राग के थपेड़े सहन करते रहोगे, वीतरागमय अपने जीवन को बनाने का प्रयास करना अनिवार्य है। सार तो केवल आत्मा के वैभव को पाने में है, बाकी सब निस्सार है, जिसने इसको समझ

लिया उसने ही समयसार के सार को पा लिया। हमने आज तक अपने आपके वैभव को नहीं जाना, इसलिये संसार की असारता से हम अनभिज्ञ हैं। हम तो भगवान के सामने यही सोचते हैं-हे प्रभु! हमारे ऊपर वह कृपा कब होगी जिस समय हम भी आपकी तरह अपने वैभव को पा सकेंगे। हम इस संसार के आकर्षण से बहुत दूर हो जायें। अब आप लोगों को रागरंग से ऊपर उठने का प्रयास करना चाहिए। यह संसारी प्राणी आज तक यह समझ नहीं पाया, इसलिए इस लोक में इसका नाच आज भी जारी है। इसीलिए तो कहा है यह संसार कैसा है? तो कहा जाता है-

“जीव अरु पुद्गल नाचे यामें, कर्म उपाधि है”

इस संसार में जीव और पुद्गल दो ही कारण हैं जिनके कारण संसार में यह जीव नाच रहा है। जिसे सम्यग्ज्ञान हो गया है, वह इस संसार के राग में न फँसकर वैराग्य को धारण करता है, उसे कोई नहीं रोक सकता है। वह तो अपने कर्मों को कल्याण के मार्ग पर बढ़ाता है। आप लोग भी अपना कल्याण करें, इस भावना के साथ विराम लेता हूँ।

अहिंसा परमो धर्म की जय।

प्रस्तुति: मुनि श्री अजितसागर जी

## विद्वत्परिषद्-पुरस्कारों के लिए प्रस्ताव आमन्त्रित

श्री अ.भा.दि.जैन विद्वत्परिषद् द्वारा प्रतिवष प्रदान किये जाने वाले पुरस्कारों हेतु विद्वानों से प्रस्ताव आमन्त्रित किये जाते हैं। ये पुरस्कार हैं -

१. पूज्य क्षु. गणेश प्रसाद 'वर्णी' पुरस्कार (राशि 5101 रुपये)

(जैन धर्म की प्रभावना एवं समग्र रचनात्मक योगदान के लिये)

२. गुरुवर्य पं. गोपालदास वरैया पुरस्कार (राशि 5101 रुपये)

(उत्कृष्ट शोधकृति के लिए)

विशेष सूचना :-

- ◆ प्रथम पुरस्कार हेतु सम्पूर्ण विवरण के साथ कृतित्व को दर्शाने वाली कोई चार पुस्तकें भिजवाना अनिवार्य है।
- ◆ द्वितीय पुरस्कार हेतु अपनी शोधकृति की चार प्रतियाँ भिजवाना अनिवार्य है।
- ◆ पुरस्कारों हेतु प्रस्तावक अथवा लेखक के लिए 'विद्वत् परिषद्' का सदस्य होना अनिवार्य नहीं है।
- ◆ पुरस्कारों की संख्या में वृद्धि संभावित है।
- ◆ पुरस्कारों का निर्णय एक उत्कृष्ट चयन समिति के द्वारा किया जायेगा, जिसका निर्णय सर्वमान्य होगा।
- ◆ पुरस्कार हेतु प्रस्ताव भेजने की अंतिम तिथि 30 मार्च, 2002 है।
- ◆ पूर्व पुरस्कृत कृतियाँ भी प्रस्तावित की जा सकती हैं।

◆ प्रस्ताव हेतु आने वाली कृतियाँ वापिस नहीं की जायेंगी। सभी कृतियों को 'मुनि श्री सुधासागर शोध ग्रन्थालय, बुरहानपुर (म.प्र.) में सुरक्षित रखा जायेगा। कृपाया पुरस्कार हेतु प्रस्ताव निम्नलिखित पते पर भिजवाएँ-

-डॉ. सुरेन्द्र कुमार जैन 'भारती'

मंत्री- श्री अ.भा.दि.जैन विद्वत् परिषद्,

एल-65, न्यू इन्दिरा नगर, ए, बुरहानपुर (म.प्र.)

पिन - 450 331

## ककरवाहा में विद्वत्समागम

ककरवाहा (टीकमगढ़) में 10 दिवसीय श्री कल्पद्रुम महामण्डल विधान विश्वकल्याण कामना महायज्ञ गजरथ महोत्सव विविध धार्मिक सांस्कृतिक कार्यक्रमों के साथ सम्पन्न हुए। जिसमें प्रमुख रूप से पं. वल्देव प्रसाद कारीटोरन का सम्मान पं. दयाचन्द्र शास्त्री अजयगढ़ का अमृतमहोत्सव तथा प्रतिष्ठाचार्य पं. गुलाब चन्द्र जी 'पुष्प' का शिखर सम्मान आयोजित किया गया। इन कार्यक्रमों में शताधिक विद्वानों का समागम रहा। मुख्य अतिथि श्री मकखन लालजी रोहणी दिल्ली व विशिष्ट अतिथि श्री पदमचन्द्र जी, श्री रमेश जी दिल्ली एवं पूर्णचन्द्र जी दुर्गा थे। कार्यक्रम की अध्यक्षता फूलचन्द्र जी प्रेमी बनारस ने की।

श्रेयांस जैन, पत्रकार

ककरवाहा (टीकमगढ़) म. प्र.

मार्च 2002 जिनभाषित

5

# मुनि श्री समतासागरकृत भक्तामर-दोहानुवाद

प्रो. रतनचन्द्र जैन

पूज्य मुनि श्री समतासागरजी द्वारा प्रणीत भक्तामर स्तोत्र का दोहानुवाद संस्कृत से अनभिज्ञ पाठकों के लिए बहुमूल्य उपहार है। इससे शब्द और अर्थ दोनों सुगम हो गये हैं। अब काव्यानन्द के साथ भावानन्द की अनुभूति की जा सकती है।

दोहे मुनिश्री की काव्य-प्रतिभा का उन्मुक्त घोष करते हैं। उनकी भाषा यह भाव नहीं देती कि यह संस्कृत पद्यों का अनुवाद है, अपितु ऐसा लगता है जैसे वे मौलिक रूप से ही लिखे गये हों। इसकी प्रतीति निम्नलिखित उदाहरणों से हो जाती है।

मैं अबोध तज लाज तव, थुति करने तैयार ।  
जल-झलकत शशि बाल ही, पकड़े बिना विचार ॥3  
त्रिजग-दुःख-हर प्रभु नमूँ, नमूँ रतन भूमौहि ।  
नमूँ त्रिलोकीनाथ को, नमूँ भवसिन्धु सुखाँहि ॥26

दोहों की भाषा में तुलसी, रहीम, भूधरदास आदि के व्यक्तित्व की झलक मिलती है। निश्चय ही कवि ने दोहा-साहित्य का गहन अध्ययन कर उनकी भाषा को आत्मसात् किया है, तभी उनकी लेखनी से प्रसूत दोहों में इतनी प्रौढ़ता है। अधोलिखित दोहा तो अपनी भाषात्मक चारुता के कारण हृदय को गहराई तक छू लेता है-

शत नारी शत सुत जनें, पर तुमसा नहिँ एक ।  
तारागण सब दिशि धरें, रवि बस पूरब नेक ॥22

मुनिश्री ने दोहों में परम्परागत लोक-शब्दावली का भी प्रयोग किया है, जैसे-थुति, दूजा, बेरोक, बौर, बखान, करहुँ, लाज आदि। इसीलिए उनमें लोक काव्य जैसी मोहकता और सर्वसाधारण की भाषा का स्वरूप आ गया है।

दोहों की उल्लेखनीय विशेषता है गागर में सागर का समाना। संस्कृत पद्यों में जिस भाव को प्रकट करने के लिए अनेक शब्दों और अनेक वाक्यों का प्रयोग किया गया है, उस भाव को मुनिश्री ने कुछ ही शब्दों या अत्यन्त छोटे वाक्य में गर्भित कर दिया है, जिससे दोहों में सूत्रों जैसी संक्षिप्तता आ गयी है और सम्पूर्ण अर्थ समासीकृत होकर एक नजर में हृदयंगम हो जाता है। मिताक्षरों में कही हुई बात मस्तिष्क में तुरन्त उतरती है और अमिट हो जाती है। संक्षिप्तता का यह चमत्कार शब्दानुवाद की बजाय भावानुवाद करने से उत्पन्न हुआ है। कोई और होता तो 'पाण्डुपलाशकल्पम्' का अनुवाद 'पलाश के पत्ते की तरह पीला' करता, जो शाब्दिक अनुवाद होता, किन्तु कवि ने उसका अनुवाद 'द्युतिहीन'

शब्द द्वारा किया है जो भावानुवाद होने से अत्यन्त संक्षिप्त हो गया है और सर्वसाधारण-गम्य भी। 'सकलवाङ्मय-तत्त्वबोधादुद्भूतबुद्धिपटुभिः' इतने लम्बे विशेषण के अर्थ को 'श्रुतपारग' इस छोटे से विशेषण के द्वारा ही अभिव्यक्त कर दिया गया है। 'नाम्भोधरोदरनिरुद्धमहाप्रभावः' के लिए 'मेघ ढके न तेज' तथा 'स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति' के लिए 'द्योतित भुवन समस्त' भावानुवाद द्वारा संक्षिप्तीकरण के श्रेष्ठ उदाहरण हैं। 'यत्कोकिलः किल मधौ मधुरं विरौति' में 'मधुरं विरौति' का अनुवाद 'कुहुके' शब्द द्वारा करके तो कवि ने भावानुवाद का श्रेष्ठतम निदर्शन प्रस्तुत किया है, क्योंकि इसमें बिम्बात्मकता का काव्यगुण विद्यमान है। ऐसा लगता है कि दोहों में अन्त्यानुप्रास भी बिना किसी विशेष परिश्रम के अपने-आप घटित होता गया है। इसने काव्य में संगीतात्मक श्रुतिमाधुर्य का समावेश कर दिया है।

कहीं-कहीं संस्कृत शब्दों के स्थान में प्रयुक्त हिन्दी शब्दों ने अपनी बिम्बात्मकता के कारण उक्ति को लालित्य से परिपूर्ण कर दिया है, जैसे 'त्रय जग जगमग हों प्रभो तुहि वर दीप रहाय' (16), यहाँ 'प्रकाश' के लिए 'जगमग' शब्द के प्रयोग से उक्ति में लालित्य आ गया है।

सन्त-कवि ने 'अनल्पकान्ति' के लिए 'आभ अदम्य' शब्द का प्रयोग किया है जो बड़ा सशक्त है। 'अदम्य' शब्द भगवान के मुख की आभा को और अधिक अतिशायितरूप में अभिव्यक्त करने की शक्ति रखता है। यह प्रयोग कवि के शब्दचयन का उत्कृष्ट उदाहरण है।

इस ग्रन्थ की एक विशेषता यह है कि इसमें छोटे-छोटे शीर्षकों के द्वारा भक्तामर-स्तोत्र के प्रत्येक पद्य का वर्ण्यविषय संकेतित कर दिया गया है, जो पद्य के अर्थ में प्रवेश करने के लिए प्रवेशद्वार के समान है।

इससे भी बड़ा लोकोपयोगी कार्य यह किया गया है कि स्तोत्र के प्रत्येक पद्य का शब्दशः हिन्दी अनुवाद दे दिया गया है। जिससे पाठकों को संस्कृत पद्यों के शाब्दिक अर्थ को समझने में बड़ी सहायता मिलेगी और परम्परया वे संस्कृत भाषा को सीखने में समर्थ होंगे। अन्वयार्थ के अन्त में दिया गया भावार्थ पद्य के भाव को समझने में सहायक है।

भक्तामर स्तोत्र के हार्द को हृदयंगम करने के लिए इससे श्रेष्ठ ग्रन्थ अभी तक मेरी दृष्टि में नहीं आया। प्रत्येक श्रद्धालु के लिये यह ग्रन्थ उसी प्रकार संग्रहणीय है जिस प्रकार तत्त्वार्थसूत्र।





# भक्तामर दोहानुवाद

मुनि श्री समतांसागर जी

भक्त अमर नत मुकुट द्युति अघतम-तिमिर पलाय ।  
भवदधि दूबत को शरण, जिनपद शीश नवाय ॥1॥

श्रुत पारग देवेन्द्र से संस्तुत आदि जिनेश ।  
की थुति अब मैं करहूँ जो मनहर होय विशेष ॥2॥

मैं अबोध तज लाज तव, थुति करने तैयार ।  
जल झलकत शशि, बाल ही पकड़े बिना विचार ॥3॥

क्षुब्ध मगरयुत उदधि ज्यों, कठिन तैरना जान ।  
त्यों तव गुण धीमान भी न कर सकें बखान ॥4॥

फिर भी मैं असमर्थ तव भक्तीवश थुति लीन ।  
सिंह सम्मुख नहीं जाय क्या मृगि शिशु पालन दीन ॥5॥

हास्य पात्र अल्पज्ञ पर, थुति करने वाचाल ।  
पिक कुहुके ज्यों आम का, बौर देख ऋतुकाल ॥6॥

शीघ्र पाप भव-भव नशे, तव थुति श्रेष्ठ प्रकार ।  
ज्यों रवि नाशे सघन तम, फैला जो संसार ॥7॥

मनहर थुति मतिमंद मैं, करता देख प्रभाव ।  
कमल पत्र जलकण पड़े, पाते मुक्ता भाव ॥8॥

संस्तुति तो तव दूर ही, कथा हरे जग पाप ।  
भले दूर फिर भी खिलें, पंकज सूर्य प्रताप ॥9॥

क्या अचरज थुतिकार हो, प्रभु यदि आप समान ।  
दीनाश्रित को ना करे, क्या निज सम श्रीमान् ॥10॥

तुम्हें देख अन्यत्र न, होत नयन संतुष्ट ।  
कौन नीर खारा चहे, क्षीरपान कर मिष्ट ॥11॥

प्रभु तन जिन परमाणु से निर्मित शांत अनूप ।  
भू पर उतने ही रहे, अतः न दूजा रूप ॥12॥

नेत्र रम्य तव मुख कहाँ, उपमा जय जग तीन ।  
कहाँ मलिन शशि बिम्ब जो, दिन में हो द्युतिहीन ॥13॥

चन्द्रकला सम शुभ्र गुण, प्रभु लाँघें त्रयलोक ।  
जिन्हें शरण जगदीश की, विचरें वे बेरोक ॥14॥

प्रभु का चित न हर सकीं, सुरतिय विस्मय कौन ।  
गिरि गिरते पर मेरु ना, हिले प्रलय पा पौन ॥15॥

तेल न बाती धूम ना, हवा बुझा नहीं पाय ।  
त्रय जग जगमग हों प्रभो, तुहि वर दीप रहाय ॥16॥

मेघ ढकें न तेज, ना ग्रसे राहु, नहीं अस्त ।  
तव रवि महिमा श्रेष्ठ है, द्योतित भुवन समस्त ॥17॥

नित्य उदित तम मोह हर मेघ न राहु गम्य ।  
सौम्य मुखाम्बुज चन्द्र वह जिसकी आभ अदम्य ॥18॥

तमहर तव मुख काम क्या, निशा चन्द दिन भान ।  
पकी धान पर अर्थ क्या, झुकें मेघ जलवान ॥19॥

शोभे ज्यों प्रभु आप में, ज्ञान न हरिहर पास ।  
जो महमणि में तेज है, कहाँ काँच के पास ॥20॥

हरि हरादि लख आप में अतिशय प्रीति होय ।  
इसी हेतु भव-भव विभो मन हर पाय न कोय ॥21॥

शत नारीं शत सुत जनें, पर तुम सा नहीं एक ।  
तारागण सब दिशि धरें, रवि बस पूरब नेक ॥22॥

अमल सूर्य तमहर कहत योगी परम पुमान ।  
मृत्युंजय हों पाय तुम, बिन शिव पथ न ज्ञान ॥23॥

ब्रह्मा विभु, अव्यय विमल आदि असंख्य अनन्त ।  
कामकेतु योगीश जिन, कह अनेक इक संत ॥24॥

विबुधार्चित बुध बुद्ध तुम, तुम शंकर सुखकार ।  
शिवपथ विधिकर बह्य तुम, तुम पुरुषोत्तम सार ॥25॥

त्रिगज दुःख हर प्रभु नमूँ, नमूँ रतन भू माँहि ।  
नमूँ त्रिलोकीनाथ को, नमूँ भवसिंधु सुखाँहि ॥26॥

शरण सर्व गुण आय, क्या विस्मय जग नहि थान ।  
स्वप्न न मुख दोषहि लखो, आश्रय पाय जहान ॥27॥

तरु अशोक तल शुभ्र तन, यूँ शोभे भगवान ।  
मेघ निकट ज्यों सूर्य हो, तमहर किरण वितान ॥28॥

सिंहासन पर यूँ लगे, कनक - कान्त तन आप ।  
ज्यों उदयाचल पर उगे, रवि कर - जाल प्रताप ॥30॥

दुरते चामर शुक्ल से स्वर्णिम देह सुहाय ।  
चन्द्रकान्त मणि मेरु पर मानो जल बरसाय ॥31॥

शशि सम शुभ मोती लगे, आतप हार दिनेश ।  
प्रकट करें त्रय छत्र तुम तीन लोक परमेश ॥32॥

गूँजे ध्वनि गम्भीर दश, दिशि त्रिलोक सुखदाय ।  
मानो यश धर्मेश का, नभ में दुन्दुभि गाय ॥33॥

मन्द मरुत गन्धोद युत सुरतरु सुमन अनेक ।  
गिरत लगे वच पंक्ति ही नभ से गिरती नेक ॥34॥

त्रिजग कान्ति फीकी करे, भामडल द्युतिमान ।  
ज्योत नित्य शशि सौम्य पर, दीप्ति कोटिशः भान ॥35॥

तव वाणी पथ स्वर्ग शिव, भविजन को बतलाय ।  
धर्म कथन समरथ सभी, भाषामय हो जाय ॥35॥

स्वर्ण कमल से नव खिले, द्युति नखशिख मन भाय ।  
प्रभु पग जहाँ-जहाँ धरत तहाँ, पंकज देव रचाय ॥36॥

धर्म कथन में आप सम, वैभव अन्य न पाय ।  
रहते ग्रहगण दीप्त पर, रवि सम तेज न आय ॥37॥

गण्डस्थल मद जल सने, अलिगण गुंजे गीत ।  
मत्त कुपित यूँ आय गज, पर तव दास अभीत ॥38॥

भिदे कुम्भ गज मोतियों से भूषित भू भाग ।  
सिंह ऐसा क्या कर सके, जिसको तुमसे राग ॥39॥

प्रलय काल सी अग्नि दव, उड़ते तेज तिलंग ।  
जनभक्षण आतुर, शमे, आप नाम जलगंग ॥40॥

लाल नेत्र काला कुपित, भी यदि समद भुजंग ।  
नाम नागदम पास जिस, वह निर्भीक उलंघ ॥41॥

हय, हाथी भयकार रव युत नृपदल बलवान ।  
नाशो, प्रभु यशगान तव, ज्यों सूरज तम हान ॥42॥

भाले लग गज रक्त के, सर तरने भट व्यग्र ।  
रण में जीते दास तव, दुर्जय शत्रु समग्र ॥43॥

क्षुब्ध जलधि बडवानली, मकरादिक भयकार ।  
आप ध्यान से यान हो, निर्भयता से पार ॥44॥

तजी आश, चिन्तित दशा, महा जलोदर रोग ।  
अमृत, प्रभु-पदरज लगा, मदन रूप हों लोग ॥45॥

सारा तन दृढ़ निगड से, कसा घिस रहे जंघ ।  
नाम मंत्र तव जपत ही होय शीघ्र निर्बन्ध ॥46॥

गज अहि दव रण सिंधु गद, बन्धन भय मृगजीत ।  
सो भय ही भयभीत हो, जो थुति पढ़े विनीत ॥47॥

विविध सुमन जिनगुण रची, माला संस्तुति रूप ।  
कंठ धरे सो श्री लहे, मानतुंग अनुरूप ॥48॥

### अलवर में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव

शिवाजी पार्क अलवर में नवनिर्मित श्री संभवनाथ दिगम्बर जैन मंदिर द्वारा आयोजित श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव राष्ट्रसंत, शाकाहार प्रवर्तक, सराकोद्वारक प.पू. उपा. श्री ज्ञानसागरजी महाराज ससंघ के पावन सान्निध्य में प्रख्यात प्रतिष्ठाचार्य वाणी भूषण पं. डॉ. विमलकुमार जैन शास्त्री एवं पं. डॉ. शीतलचन्द्र जैन जयपुर के निर्देशकत्व में सानन्द सम्पन्न हुआ।

अनन्त कुमार जैन  
शिवाजी पार्क, अलवर

# व्रत : मानवजीवन की शोभा

प्राचार्य नरेन्द्रप्रकाश जैन

पद्मपुराण में एक प्रसंग आता है कि वनवास से लौटने पर आयोध्या में श्री रामचन्द्रजी राजगद्दी ग्रहण कर चुके हैं और सारा काम ठीक तरह से चल रहा है। उसी समय एक चर्चा चलती है कि देखो, रामचन्द्रजी ने सीता को घर में बैठा लिया, जबकि वह इतने वर्ष रावण के यहाँ रह आई। जब अयोध्या का राजा इस तरह का काम करेगा तो दूसरे लोग भी इसी तरह शील से डिगी हुई स्त्रियाँ को स्वीकार

प्राचार्य श्री नरेन्द्रप्रकाश जी जैन एक ऐसा नाम है, जो अपनी रोचक, हृदयस्पर्शी एवं विचारोत्तेजक प्रवचनशैली, विद्वत्तापूर्ण पत्र-सम्पादन, अखिल भारतवर्षीय दि. जैन शास्त्रीपरिषद् के सफल संचालन, निरभिमान पाण्डित्य, अपरिग्रही, सरल, निर्भीक और श्रद्धा-वात्सल्य से परिपूर्ण व्यक्तित्व के लिए देश-विदेश के जैनसमाज में सुप्रसिद्ध है। 'जैनगजट' के दीर्घ सम्पादन काल में उनकी लेखनी से मार्मिक सम्पादकीय आलेख प्रसूत हुए हैं। उनका एक संकलन 'चिन्तन प्रवाह' के नाम से प्रकाशित हुआ है। वह प्रत्येक ज्ञानपिपासु, स्वाध्यायप्रेमी और शंकामुमुक्षु के लिए पठनीय है। उक्त संकलन से एक लेख साभार प्रस्तुत है।

करने लगेगे। ऐसी दशा में मर्यादा कहाँ रहेगी? इस तरह की चर्चा अयोध्या में चली तो रामचन्द्रजी को यही उचित लगा कि राजनीति की शुद्धता के लिए सीता को छोड़ना चाहिये। उन्होंने एक कठोर निर्णय ले लिया।

श्रीराम ने अपने सेनापति कृतान्तवक्र को बुलाया और उसको आदेश दिया कि सेनापति, सीता गर्भवती है। उसे यह दोहला हुआ है कि तीर्थयात्रा करे। तुम रथ सजाओ और सीता को उसमें बैठाओ और तीर्थयात्रा के बहाने यहाँ से ले जाओ और घने वियावान जंगल में उसे छोड़ आओ। यह कठोर आदेश सुनकर सेनापति की आँखों में आँसू आ गये। उसने कुछ साहस किया, विरोध करने का। रामचन्द्रजी उनके भावों को भाँप गये। कड़ककर बोले- 'सेनापति, मुझे उत्तर नहीं सुनना। तुम्हें वही कार्य करना है, जो कि मेरी आज्ञा है।' और, तब वह सीता को रथ में बैठाकर घने वियावान जंगल में ले गया, जहाँ जंगली पशुओं का चीत्कार सुनाई पड़ रहा था। उसने रथ रोक दिया। सीता ने पूछा- 'सेनापति! यहाँ तो कोई मन्दिर नहीं है, तुमने रथ को यहाँ क्यों रोका? सेनापति की आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली, हिचकियाँ बँध गई, रोते हुए सेनापति बोला - 'माँ, मैं अधम हूँ। मुझे ऐसा आदेश हुआ है कि आपको जंगल में छोड़ दूँ। मैं नीच हूँ और पापी हूँ।' तब महासती सीता ने ढाँढ़स बँधाया और कहा कि रोओ मत सेनापति, तुम स्वामी राम के सेवक हो। सेवक का कर्तव्य स्वामी की आज्ञा का पालन करना होता है। तुमने कर्तव्य पूरा

किया। जाओ, वापिस जाओ। मेरे भाग्य में यही लिखा है। उसे हँसकर भोगूँगी। दुःख तो जीवन में आता ही है, कुछ रोकर भोगते हैं और कुछ हँसकर भोगते हैं। जो दुःखों को हँसकर झेलते हैं, उनके कर्मों की निर्जरा होती है और जो दुःखों को रोकर भोगते हैं उनका संसार बढ़ जाता है। सीता ने कहा कि तुम जाओ। सेनापति ने कहा कि माँ, मैं जाता हूँ। क्या स्वामी राम के प्रति आपका

कोई संदेश है? सीता ने कहा-हाँ, है। यही कहना स्वामी राम से कि जैसे लोगों के कहने से उन्होंने मुझे छोड़ दिया है, वैसे ही लोगों के कहने से अपना संयम नहीं छोड़ दें। लोगों के कहने से मुझे छोड़ दिया, इसमें कोई आपत्ति की बात नहीं है। मेरे भाग्य का यही लेख था, उसे मैं भोगूँगी, लेकिन यदि उन्होंने व्रत-संयमरूपी धर्म को छोड़ दिया तो प्रलय हो जायेगी, क्योंकि 'यथा राजा तथा प्रजा'। राजा अगर धर्म को छोड़ेगा तो प्रजा में धर्म नहीं रह सकेगा। इसलिये लोगों के कहने से अपने नियम-धर्म को नहीं छोड़ दें।

पद्मपुराण का यह प्रसंग मैंने आपको सुनाया। हजारों साल पहले की यह घटना आज फिर हमारे कानों में गूँज कर कह रही है कि बीसवीं सदी में जैन कुल में जन्मे इन्सान! आज लोग धर्म की विपरीत परिभाषाएँ कर रहे हैं, किन्तु तुम उनके कहने से संयम को मत छोड़ देना, तुम उनके कहने से देव-पूजा को मत छोड़ देना, तुम उनके कहने से चरित्र को मत छोड़ देना।

खेद की बात है कि आज धर्म को विवाद का विषय बना दिया गया है। धर्म का काम विवादों को मिटाना है। धर्म का काम समता उत्पन्न करना है। धर्म का काम निराकुलता का उपार्जन करना है। धर्म का काम शान्ति का उद्भव करना है। इसलिये जिन कामों से परिणामों में समता आती हो, जिन कामों से दुःख कम होते हों, उन कामों को करने का नाम 'धर्म' है। जब तक धर्म हमारे जीवन में नहीं उतरेगा, तब तक कल्याण

नहीं होगा।

भगवान महावीर का जीव अपने सैकड़ों भव पहले भील की पर्याय में था। पुरुरवा भील था उसका नाम और काम शिकार करना था। एक दिन शिकार करने गया। तीर ताना। छोड़ने ही वाला था कि भीलनी ने कंधा झकझोर दिया। बोली-‘क्या करते हो, गजब हो जायेगा?’ यह तीर किस पर चला रहे हो? वह बोला कि देखती नहीं हो, वह झाड़ी के पीछे दो आँखें किसी हिरण की चमक रही हैं।

‘अरे बाबले, वह हिरण नहीं, वीतरागी मुनि हैं। ये क्या पाप करने जा रहे हो तुम? भीलनी ने उसे समझाया।

तुरन्त तीर नीचे हो गया। पुरुरवा भील मुनिराज के चरणों में गिर गया। उसने कहा-मुझे धर्म का कुछ उपदेश दीजिए, महाराज!

पास जाकर उस समय अगर वह मुनिराज इस चक्कर में पड़ जाते कि पहले इसे पूरे ‘समयसार’ का ज्ञान करा दें, तब उसके बाद इसे कुछ उपदेश दें तो पुरुरवा भील का भी उद्धार होने वाला नहीं था। उस भील को उन मुनिराज ने केवल इतना ही कहा कि तुम शराब पीना छोड़ दो, मांस खाना छोड़ दो और शहद खाना छोड़ दो। मद्य-मांस-मधु इन तीन का त्याग करो, बस इतना उस भील से कहा। बाकी आत्मा का ज्ञान कराने के चक्कर में वह नहीं पड़े। अगर आत्मा का पूरा ज्ञान कराने के चक्कर में पड़ जाते तो भील का इतना क्षयोपशम था ही नहीं कि वह समयसार तो क्या, बालबोध भी समझ पाता। इसलिये मद्य-मांस-मधु के त्याग रूप जो थोड़ा सा संयम पुरुरवा भील ने धारण किया, उसके प्रभाव से वह महावीर बना। इससे स्पष्ट है कि जरा-सा व्रत या त्याग तीर्थंकर भी बना सकता है। त्याग की महिमा पैसे से बढ़कर है।

त्याग भी दो तरह का होता है- (1) शब्दों का

और (2) आचरण या व्यवहार का। शब्दों की महिमा को मानने वालों की संख्या हमारे समाज में निरन्तर बढ़ती जा रही है, परन्तु जो उस महिमा को अपने में उतार सकें, ऐसे लोगों की संख्या नगण्य है। बकौल बाबा तुलसीदास ‘पर उपदेश कुशल बहुतेरे। जे आचरहिं, ते नर न घनेरे।’ परोपदेशक ढोल की तरह होते हैं और सदाचारी होते हैं पुष्प की सुगन्ध की तरह। ढोल के बारे में कहावत है ‘दूर के ढोल सुहावने’, किन्तु पुष्पों को तो लोग गले के हार बनाकर पहनते हैं। व्रती ही समाज की शोभा हैं। आज कुछ लोग व्रतों की और व्रतियों की महिमा को नकारने की कोशिश कर रहे हैं, लेकिन वह वक्त जल्दी ही आयेगा जब ऐसे लोग समाज द्वारा नकार दिये जायेंगे।

आज समाज में दो तरह के लोग हैं - (1) जो स्वयं किसी मजबूरी से अथवा कर्मोदयवश व्रत धारण नहीं कर पा रहे हैं, किन्तु जो व्रतधारी हैं, उनकी समुचित विनय करते हैं, उन्हें यथोचित सत्कार देते हैं और (2) जो जान-बूझकर ऐलान करते हुए स्वयं व्रत धारण न करने में खुशी मानते हैं तथा जो व्रती हैं, उनकी खिल्ली उड़ाते हैं। ये दूसरी तरह के लोग हमारी चिन्ता का विषय हैं और हम समाज से अपील करते हैं कि इनसे सावधान रहें। कोई कितना ही ज्ञानवान हो, किन्तु व्रती के सामने वह तुच्छ है। जिसका सिर व्रतियों के चरणों में नहीं झुकता, वह अहंमन्य है, उसकी होनहार अच्छी नहीं है। ऐसे लोगों को आदर देने से जिनकी होनहार अच्छी है, उनका भी बिगाड़ हो सकता है, हो रहा है। आचार्यों ने कहा है -“स्वयं यथाशक्ति व्रतादिक धारण करो, यदि धारण नहीं कर सको तो उनमें श्रद्धा तो अवश्य रखो।” जो स्वयं व्रत धारण नहीं करते और न उनमें श्रद्धा रखते हैं, ऐसे लोगों को सद्बुद्धि प्राप्त हो, हमारी तो यही कामना है। 104, नई बस्ती, फीरोजाबाद- 283203

## बेवसाइट तैयार

सभी को ज्ञातकर अति प्रसन्नता होगी कि अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान, बीना की संचालित गतिविधियों एवं पाण्डुलिपियों की सूचियों, अनेकान्तदर्पण, संस्थान समाचार आदि विषयक जानकारी प्राप्त करने हेतु संस्थान की बेवसाइट तैयार हुई है जिसको इस नाम से खोला जा सकता है- [www.Shrutdham.com](http://www.Shrutdham.com)

## सुदामानगर इन्दौर में महावीरद्वार

इन्दौर। 28 फरवरी 2002। भगवान महावीर 2600वाँ जन्मजयन्ती महोत्सव वर्ष में इन्दौर की प्रसिद्ध कॉलोनी सुदामानगर में भव्य महावीर द्वार का निर्माण किया जा रहा है। इसका शिलान्यास परमपूज्य उपाध्याय श्री निजानन्दसागरजी इस अवसर पर महती धर्मसभा को सम्बोधित करते हुए पूज्य उपाध्यायश्री ने कहा कि व्यक्ति को दूसरों की प्रगति के लिये द्वार बनना चाहिये, दीवार नहीं। अहिंसा वर्ष में बनने वाला यह महावीर द्वार जन-जन में अहिंसा का संदेश देते हुए मानव मात्र की प्रगति का पथ प्रशस्त करेगा।

पदमचन्द्र मोदी, महामंत्री

# द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्ग

स्व. पं. लालबहादुरजी शास्त्री

द्रव्यलिङ्ग शब्द का अर्थ बाह्य वेष से है, मिथ्यात्व और सम्यक्त्व से नहीं है। द्रव्यलिङ्गी साधु मिथ्यादृष्टि भी हो सकता है और सम्यग्दृष्टि भी होता है। यदि मात्र मिथ्यादृष्टि ही होता, तो द्रव्यलिङ्ग का पर्यायवाची शब्द मिथ्यादृष्टि हो सकता था। हम द्रव्यलिङ्ग का पर्यायवाची मिथ्यादर्शन को समझें, तब जो साधु द्रव्यलिङ्ग और भावलिङ्ग दोनों से संयुक्त है, उसे हमें मिथ्यादर्शन और सम्यग्दर्शन दोनों से संयुक्त मानना चाहिए।

**शंका -** भावलिङ्ग से निरपेक्ष द्रव्यलिङ्ग मिथ्यादृष्टि के ही होता है?

**समाधान-** नहीं, जिस मुनि के छठे गुणस्थान जैसे भाव नहीं हैं, वह पंचम गुणस्थान या चतुर्थ गुणस्थान जैसे भाव भी रख सकता है, लेकिन द्रव्यलिङ्ग मुनि जैसा ही है। अतः द्रव्यलिङ्गी होकर भी वह सम्यग्दृष्टि है।

**शंका-** यदि ऐसा है तो शास्त्रों में ऐसा क्यों लिखा है कि द्रव्यलिङ्गी मिथ्यादृष्टि भी मर कर प्रैवेयकों में उत्पन्न हो सकता है।

**समाधान -**जहाँ द्रव्यलिङ्गी मिथ्यादृष्टि या केवल द्रव्यलिङ्गी की चर्चा आती है कि वह आत्मज्ञान से शून्य होता है, वहाँ अभव्य द्रव्यलिङ्गी से अभिप्राय है। क्योंकि अभव्य को कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। अतः उसका मिथ्यादृष्टिपन निश्चित है।

पंडित दौलतराम जी ने छःढाला में जो लिखा है 'मुनिव्रतधार अनन्त वार ग्रीवक उपजाओ .....' वह अभव्य को लक्ष्य में रखकर ही लिखा है। जो भव्य है वह अनन्तवार मुनिव्रत नहीं धारण करता। अधिक से अधिक वह 32 बार ही मुनिव्रत धारण करेगा। 32वीं बार तो वह अवश्य ही मुक्ति प्राप्त करेगा, ऐसा शास्त्रों का उल्लेख है।

समयसार में तो आचार्य कुन्दकुन्द ने जिस मिथ्यादृष्टि अज्ञानी की चर्चा की है, उसे द्रव्यलिङ्गी न लिखकर अभव्य शब्द से ही उच्चरित किया है। यथा-

वदसमिदीगुत्तीओ सीलतवं जिणवरेहि पण्णत्तं ।

कुव्वंतोवि अभव्वो अण्णाणी मिच्छदिट्ठो दु ॥273

जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिपादित (मनमाने ढंग से सदोष नहीं) पाँच समिति, तीन गुप्ति इस तरह 13 प्रकार के चारित्र का पालन करता हुआ भी अभव्य अज्ञानी और मिथ्यादृष्टि है। इसके आगे पुनः लिखा है कि अभव्य 11 अंगों का पाठी होने पर भी ज्ञानी नहीं है -

मोक्खं असद्वहंतो अभवियसतो दु जो अधीएज्ज।

पाठो ण करेदि गुणं असद्वहं तस्स णाणं तु ॥274

मोक्षतत्त्व का श्रद्धान न करने वाला अभव्य जीव यदि 11 अंग का पाठ भी करे तो उससे लाभ नहीं है।

इस कथन में भी अभव्य शब्द का ही प्रयोग किया है। द्रव्यलिङ्ग शब्द का प्रयोग नहीं किया है। वास्तव में जिसका द्रव्यलिङ्ग सुरक्षित (आगमानुमोदित) है वह साधु के उचित भावों से किंचित् हीन भी हो, तब भी उसे द्रव्यलिङ्गी नहीं कहा जा सकता। कारण स्पष्ट है, परिणामों का उतार-चढ़ाव इतना सूक्ष्म है कि उसे छद्मस्थ व्यक्ति ग्रहण नहीं कर सकता। जो मुनि वेष और तदनुकूल आचरण का निर्दोष पालन कर रहा है, वह कदाचित् अन्तरंग के भावों से हीन होने पर भी स्थूल ऋजुसूत्र नय की दृष्टि से भावलिङ्गी ही कहा जायेगा। इस सम्बन्ध में यहाँ हम एक उदाहरण देते हैं। पुलाक, वकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ, स्नातक इन सभी साधुओं को आगम में भावलिङ्गी बताया है। साथ ही जहाँ संयम, श्रुत, प्रतिसेवना आदि से इनका विभाजन किया है, वहाँ पुलाक में छहों लेश्याएँ बतलाई हैं। प्रश्न यह है कि छहों लेश्याओं का सद्भाव चतुर्थ गुणस्थान तक ही बतलाया है, उसके बाद नहीं। यदि पुलाक के कृष्ण लेश्या भी होती है, तो वह चतुर्थ गुणस्थान में आ गया, फिर भावलिङ्गी कहाँ रहा? और यदि वह भावलिङ्गी है तो उसके कृष्ण लेश्या नहीं होना चाहिए। इसका समन्वय यही है कि करणानुयोग की अपेक्षा मुनि का लेखा-जोखा करें तो उसके कृष्ण लेश्या सम्भव है और चरणानुयोग की अपेक्षा तो वह महाव्रती मुनि है, क्योंकि मुनि का वह आचरण पालन कर रहा है, फिर भले ही वह त्रुटि पूर्ण ही क्यों न हो।

उत्तरपुराण में एक कथा आई है। कोई मुनि कहीं ध्यान में बैठे हुए थे। उनके बारे में समवशरण में भगवान से पूछा गया, तो उन्होंने कहा कि इस समय उन मुनि के ऐसे निकृष्ट परिणाम है कि यदि आयु का बन्ध हो जाय, तो सातवें नरक चले जायँ। दूसरे क्षण में उनके सातवें नरक के भावों की तीव्रता कम हुई, तो केवली ने वैसा बतलाया। धीरे-धीरे उनके भावों की विशुद्धि बढ़ती गई, तो वैसा ही सर्वज्ञ के द्वारा उनका उत्कृष्ट फल होने की सम्भावना प्रकट की गई। इस कथा से यह निष्कर्ष निकलता है कि अन्तर्मुहूर्त में भावों का उतार-चढ़ाव कहीं से कहीं जाता है और उतार-चढ़ाव के साथ ही साथ साधु के गुणस्थान भी बदलते रहते हैं। तब कौन कब द्रव्यलिङ्गी हुआ और कौन अब भावलिङ्गी हुआ? इसका निर्धारण नहीं किया जा सकता।

कोई मुनि जब 11वें गुणस्थान से गिरता है तो क्रमशः वह गिरते-गिरते पहले गुणस्थान में भी आ सकता है। ध्यान में बैठे ही बैठे उसका यह पतन हो रहा है ऐसी स्थिति में हमें वहाँ यह आशंका करने का अधिकार नहीं है, कि कहीं इस समय वह मिथ्यादृष्टि न हो? या

द्रव्यलिङ्गी न हो? इसे नमस्कार करें या नहीं। वहाँ तो उसे भावलिङ्गी समझकर नमस्कार करना ही होगा। वहाँ हमारी दृष्टि चरणानुयोग का ही आश्रय लेगी।

वास्तव में जिस भावलिङ्ग का हम अभिनन्दन करते हैं वह भावलिंग भी द्रव्यलिङ्ग पर ही निर्भर करता है। यदि भावलिंग के बिना द्रव्यलिङ्ग व्यर्थ है तो द्रव्यलिङ्ग के बिना भावलिङ्ग का तो अस्तित्व ही नहीं है, व्यर्थता तो बहुत दूर की बात है। व्यर्थ तो वह है जिसका अस्तित्व तो हो, पर अपेक्षित लाभ न हो। वहाँ द्रव्यलिङ्ग का अस्तित्व तो है पर भावलिङ्ग का तो अस्तित्व भी नहीं है।

उक्त चर्चा का निष्कर्ष यह है कि अभव्य जीव यदि मुनि बनता है, तो वही द्रव्यलिङ्गी मुनि है। दि. जैन शास्त्रों में जिन जैनाभासों की चर्चा की है, वे द्रव्यलिङ्गी नहीं हैं। क्योंकि बाह्य वेषभूषाएँ द्रव्यलिङ्ग के अनुकूल नहीं हैं। जैनतर सम्प्रदाय के कुटिचक, बहूदक, हंस, परमहंस साधु भी द्रव्यलिङ्गी नहीं हैं, क्योंकि वहाँ जैनत्व का आभास नहीं है। सच्चे देवशास्त्रगुरु का श्रद्धालु यथावत् निर्ग्रन्थदीक्षा लेने वाला जो अपने मूलगुणों में भी दोष लगाता है, वह भी द्रव्यलिङ्गी नहीं है। क्योंकि उस प्रकार के पुलाकादि मुनि सभी शास्त्रों में भावलिङ्गी बताये हैं। इसी प्रकार अधःकर्म करने वाले, मंत्र तंत्रादि से आजीविका करने वाले तथा दूसरे प्रकार के भ्रष्ट मुनि भी द्रव्यलिङ्गी

नहीं, प्रत्युत द्रव्यलिङ्ग से भी अत्यधिक गिरे हुए हैं। नव ग्रैवेयक तक पहुँचने वाले द्रव्यलिङ्गी साधुओं का बाह्य आचरण भी बड़ा ही सधा हुआ होता है, वे उपसर्ग भी सहन करते हैं, विचलित नहीं होते, कायक्लेश भी असाधारण करते हैं, तभी तो उनका नवग्रैवेयक में पहुँचना सम्भव है, अन्यथा भ्रष्ट मुनि तो नरक निगोदादि के पात्र ही होते हैं। समयसार की गाथा २७३ जिसे हम ऊपर लिखे आये हैं, उसकी टीका में अमृतचन्द्र आचार्य ने लिखा है-

“परिपूर्णशीलतपः त्रिगुणपंचसमिति परिकलितमहिंसादिपंचमहाव्रतरूपं व्यवहारचारित्रभव्योऽपि कुर्यात्”

यहाँ रेखांकित शब्द ‘परिपूर्ण’ इस बात का द्योतक है कि द्रव्यलिङ्ग, अभव्य मिथ्यादृष्टि का द्रव्यलिङ्ग भी बड़ा निर्दोष होता है, उसमें पोल नहीं होती। अतः जो लोग द्रव्यलिङ्ग का सम्बन्ध आचरणहीनता, सदोष आचरण या मिथ्यादर्शन से जोड़ते हैं वह उचित नहीं है। भव्य जीव तो मुनि बनकर परिणामों का उतार-चढ़ाव करता है, उसकी द्रव्य भावलिङ्गता का निश्चय न होने से वह भावलिङ्गी ही साधु है। चूँकि अभव्य कभी सम्यग्दर्शन धारण नहीं कर सकता, अतः उसके परिणामों का गुणस्थानानुसार कोई उतार-चढ़ाव नहीं है। यदि है तो केवल मिथ्यात्वगुणस्थान के अन्दर ही है। बस उसी का मुनि बनना द्रव्यलिङ्ग है।

## ज्यों-ज्यों उमरें बढ़ने लगतीं

अशोक शर्मा

ज्यों-ज्यों उमरें बढ़ने लगती, त्यों-त्यों लगता ऐसा शंख-सीपियों को बटोरती नाबालिग थी उमर हमारी। बहुत भला लगता था हमको टूटे घर की नींव हिलाना। शीश किसी के धौल जमाना और किसी को जीभ चिढ़ाना कागज, मिट्टी और काँच के खेल खेलना, तोड़-सजाना। धूल सने चेहरे पाँवों का, मर्म बताते झूठ जताना। खेल-खिलौने, छुटने लगते त्यों-त्यों लगने लगता ऐसा मन मस्ती में रंग जमाती बड़बोली थी उमर हमारी। ॥1॥ बहुत भला लगता था हमको दर्पण में कुछ बिम्ब उगाना शंख बीनना नदी किनारे और बालू के भवन बनाना

सतरंगी सन्ध्या के आंगन कुछ जूड़ों में फूल टाँकना रंगों के आँचल लहरा कर नयनों में उन्माद आँजना। ज्यों-ज्यों रंग धुँधलने लगते त्यों-त्यों लगने लगता ऐसा। वय-संधि के ऋतुद्वार पर क्या खुमार थी उमर हमारी ॥2॥ अब है सुधियों के आँगन में बीते कल की छलना पाँख-पाँख फूलों का झरना शाख-तनों का गलना रंग नहीं चाहे चूनर में और नया अब चढ़ना। आयु के इस श्वेत-पत्र पर कुछ लिखना कुछ पढ़ना। श्वेत उमर की फसलें पकतीं त्यों-त्यों लगने लगता ऐसा जोड़-घटे का गणित लगाती है बालिग यह उमर हमारी ॥3॥

अभ्युदय निवास

36,बी मैत्री बिहार

भिलाई (दुर्ग), छत्तीसगढ़

# आहार दान की विसंगतियाँ

ब्र. महेश जैन

सुना जाता है कि आज से 200/300 वर्ष पूर्व अपने क्षेत्रों में जैन साधुओं का अभाव सा था, कहीं दक्षिण भारत में एक-दो साधु देखे जाते थे, उस समय जो भी जैन विद्वान थे, वे दिगम्बर साधुओं के दर्शन के लिए तरसते ही रह गये। समय बीतता गया। इस सदी में एक सिंहवृत्ति के साधु हुए, जिनका नाम था आचार्य शान्तिसागर जी महाराज। उनकी अनुकंपा से आज तक वह परम्परा सतत चल रही है। आज हमारे सौभाग्य से वर्तमान में 800/900 साधु व आर्यिका आदि भारत में यत्र-तत्र बिहार कर रहे हैं। तथा धर्म का प्रचार-प्रसार प्रचुरता से हो रहा है।

पहले साधुओं का अभाव होने के कारण गाँव एवं शहरों में साधुओं के दर्शन ही नहीं होते थे व हमें आहार विधि आदि का कोई ज्ञान नहीं था। यही कारण था कि आचार्य शान्तिसागर जी महाराज ने दीक्षा लेने के उपरान्त कई वर्षों तक मात्र दूध व चावल ही लिया। जब इस संबंध में उनसे पूछा गया तो पूज्य आचार्यश्री ने बताया कि आहार दाताओं को शुद्धि विषयक ज्ञान ही नहीं है, अन्य वस्तुएँ कैसे ग्रहण की जायँ? वर्तमान में परिस्थितियों ने बहुत पलटा खाय़ा है। आज भारत में हर 100/50 कि.मी. की दूरी पर कोई न कोई साधु संत हमें मिल जाते हैं व हमारे शहर-गाँवों में पधारते रहते हैं। श्रावक जन अपना कर्तव्य समझकर साधुओं लिए आहार बनाते हैं, पर ऐसा देखा जाता है कि आहार संबंधी शुद्धि का प्रवचन सुनकर व पुस्तकों को पढ़कर भी, आलस्य से भरा हुआ श्रावक, अपनी सुविधानुसार साधु को आहार देता है, न कि आगम व प्रवचनानुसार। क्योंकि मैं कई बार मुनि संघों के दर्शनार्थ जाता रहता हूँ व हमारे शहर में भी मुनि संघ आते रहते हैं। मैंने आहार शुद्धि के विषय में श्रावकों के चौकों का निरीक्षण किया व उनकी क्रियाओं को देखा एवं उनसे चर्चा की, मुझे वहाँ बहुत सी अशुद्धियाँ देखने-सुनने को मिलीं, जिससे चित्त में बड़ा सन्ताप हुआ। तब यह लेख लिखने की भावना बनी है। हमें विचार करना है कि साधुओं को दिया जाने वाला आहार कहाँ तक आगम सम्मत है?

1. जल - आहार में जो जल उपयोग में लिया जाता है, वह कुएँ का या किन्हीं संघों में हैण्डपंप का लिया जाता है। (हम इस विषय पर चर्चा नहीं करेंगे कि हैण्डपंप का जल उपयोग में लिया जाय या नहीं) श्रावक का कर्तव्य है कि पानी छानकर जिवानी को कुन्डेवाली

बाल्टी द्वारा सीधे उसी कुएँ में क्षेपण करे, जहाँ से पानी लाया गया हो। पानी को साफ एवं मोटे छन्ने से छाना जाना चाहिए। लेकिन वर्तमान में ऐसा बिल्कुल भी नहीं हो रहा है। श्रावक जो छान्ना पानी छानने में प्रयोग करता है वह पतला एवं छिरछिरा होता है। उससे पानी छानने की विधि बनती ही नहीं है। यदि छान्ना मोटा भी है तो उसकी जिवानी यथास्थान क्षेपण नहीं की जाती है। अधिकतर कुएँ घर से दूर होते हैं। वहाँ से पानी लाया जाता है और उसकी जिवानी को नाली में बहा दिया जाता है। हैण्डपंप के पानी की जिवानी को यथास्थान पहुँचाने का प्रश्न ही नहीं उठता। अतः त्रस जीवों की रक्षा नहीं हो पाती है व छान्ना पतला होने से साधु को दिये गये भोजन में त्रस हिंसा का दोष लगता है एवं जीवों की घोर हिंसा होती है।

2. दूध - आज का श्रावक साधुओं के लिए शुद्ध दूध की व्यवस्था कर ही नहीं पाता है। मैंने कई संघों में जाकर देखा है कि लोग साधुओं को अशुद्ध दूध पिलाते हैं। एक क्षेत्र पर 15/20 साधुओं का संघ रुका हुआ था। वहाँ के क्षेत्र प्रबन्धक तीन-चार किलोमीटर दूर से 25/30 लीटर दूध कढ़वाकर मँगवाते थे और दूध सारे चौकों में बाँटा जाता था। दूध का कढ़ना प्रातः 5.30 बजे शुरू हो जाता था और श्रावक के यहाँ पहुँचते-पहुँचते आठ बजे जाते थे। ऐसे दूध को कैसे आहार के योग्य कहा जा सकता है? कच्चे दूध की मर्यादा मात्र अन्तर्मुहूर्त (48 मिनट) की है। इतने समय में दूध गर्म हो जाना चाहिए। लेकिन जिस प्रकार दूध मँगाया जाता है उसमें मर्यादा का पालन नहीं होता। एक स्थान पर यह देखकर अत्यन्त दुख हुआ कि श्रावक डेयरी का थैलीवाला दूध ही गर्म करके आहार में दे रहे थे।

मैं समझता हूँ कि शुद्ध दूध प्राप्त करने की समस्या सही है, लेकिन यदि हम थोड़ा सा आलस्य छोड़ सकें तो दूध की शुद्धि बन सकती है। सर्वश्रेष्ठ तो यही है कि हर चौकेवाला स्वयं गर्म जल लेकर जाये एवं शुद्ध दूध कढ़वाकर लाये। एवं जहाँ पर पीछियाँ अधिक हों और क्षेत्र पर ठहरी हों और दूध कहीं अन्यत्र से सभी चौकों वालों के लिए लाना पड़ता हो, वहाँ प्रबन्धकों को चाहिए कि वे जहाँ दूध निकाला जा रहा हो, उसी स्थान पर बड़ा भगौना एवं एक बड़ा गैस का चूल्हा रखें। जैसे-जैसे दूध नपता जाए, उसे छानकर वहीं भगौने में गर्म कर लें और फिर श्रावकों को वितरित कर दें। ऐसा करने

से दूध शुद्ध प्राप्त किया जा सकता है।

3. घी - शुद्ध घी का प्राप्त करना वर्तमान में एक दम असंभव है। चारित्रचक्रवर्ती ग्रंथ में पूज्य आचार्य शान्तिसागर जी महाराज से यह प्रश्न किया गया कि घी शुद्ध नहीं मिलता। क्या करना चाहिए तो आचार्य श्री कहते हैं घी शुद्ध न मिले तो तेल का इन्तजाम करना चाहिए। परन्तु न मालूम क्यों हम जैनभाइयों के दिगाम में यह बात अच्छी तरह जमी हुई है कि यदि साधुओं को घी नहीं दिया जायेगा, तो उन्हें संयम साधन करने के लिए शक्ति कैसे प्राप्त होगी? जबकि यह अकाट्य सत्य है कि दक्षिण भारत, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल आदि प्रदेशों में अधिकांश जनता ने तो घी का स्वाद चखा ही नहीं है। वे तेल पर आधारित हैं, और स्वस्थ एवं दीर्घायु हैं। अतः इस धारणा को हमें निकाल देना चाहिए। जहाँ तक शुद्ध घी का प्रश्न है वह केवल उसी परिवार को प्राप्त हो सकता है, जिसके घर में स्वयं के पशु हों, लेकिन ऐसे घर वर्तमान में देखने में नहीं आते हैं। आज-कल जो घी इस्तेमाल होता है, वह कई प्रकार से प्राप्त किया हुआ होता है।

1. श्रावक अपने घर में जिस शुद्ध दूध का प्रयोग करता है, उसकी मलाई एकत्रित करता जाता है। जब मलाई 5-7 दिन की एकत्रित हो जाती है तब उसको गर्म करके घी निकालता है। घी निकालते समय अत्यन्त बदबू भी आती है, जो इस बात का लक्षण है कि मलाई सड़ चुकी है। फिर भी वह मलाई का घी निकालकर अपने को "यह शुद्ध घी महाराज के लिए ठीक है" ऐसा बहलाता हुआ प्रसन्न होता है। जो बिल्कुल गलत है। अशुद्ध दूध की मलाई की तो चर्चा ही व्यर्थ है। हाँ यदि शुद्ध दूध लाकर अन्तर्मुहूर्त में गर्म कर लिया गया हो, तो उसकी निकाली गयी मलाई की मर्यादा अधिक से अधिक 24 घंटे की है। इसके उपरान्त उसमें त्रस जीव उत्पन्न हो जायेंगे। सामान्यतः किसी भी श्रावक के घर में इतनी मलाई नहीं निकल सकती, जिसका घी बनाया जा सके, अतः इस प्रकार शुद्ध घी बनाना संभव नहीं है।

2. कुछ लोग घी वालों से (हमको शुद्ध घी चाहिए महाराज को आहार में देना है) ऐसा कहकर घी खरीद लाते हैं और उसे शुद्ध मानते हैं। उन दाताओं को सोचना चाहिए कि जिन घीवालों से आपने घी लिया है, वे आपकी धार्मिक सीमाओं को नहीं जानते। अतः उससे लाया हुआ घी शुद्ध कैसे हो सकता है? केवल घी वाले के यह कह देने से कि घी सोले का शुद्ध है", घी शुद्ध नहीं हुआ करता, वह यह नहीं जानता कि शुद्ध घी किसे कहते हैं, शुद्ध दही कैसे जमता है? अतः ऐसा घी आहार दान के योग्य नहीं होता।

3. कुछ लोग घीवालों से डेरी का या ग्लेक्सो

आदि कम्पनी का घी खरीदकर आहार में देने लगे हैं। उनका कहना है कि अठपहरा घी तो, मिलता नहीं और महाराज को घी देना ही है तो क्या करें? एक स्थान पर तो चातुर्मास समिति वाले डेरी का निकला हुआ घी (अशुद्ध समझते हुए भी) पूरे चार माह तक संघ को आहार में शुद्ध कहकर खिलाते रहे। (यह मैं बिल्कुल सत्य घटना लिख रहा हूँ) जो नितांत अशुद्ध है।

### इस समस्या के तीन समाधान

1. सर्वोत्तम तो यही है कि बजाय घी के शुद्ध तेल अपने सामने किसी एकसपेलर को धुलवा कर निकलवा लिया जाय, (एक बार का निकला हुआ तेल कई माह तक शुद्ध रहता है) और उसे ही आहार बनाने में प्रयुक्त किया जाए।

2. घी से ज्यादा शक्ति बादाम में बतायी जाती है। बजाय 100 ग्राम घी के यदि साधु को आहार में 5/7 बादाम घिसकर दे दिये जायें तो हर दृष्टि से श्रेष्ठ रहते हैं, तथा अशुद्धि का भी कोई प्रश्न नहीं उठता। ये बादाम दूध में मिलाकर दिये जा सकते हैं।

3. जैन समाज को एक ऐसी दुग्ध सोसायटी बनानी चाहिए जो शुद्ध घी (आगम की मर्यादा के अनुसार) बनाकर श्रावकों को आहार के लिये सप्लाई किया करे।

4. आटा - आहार के लिए जो आटा प्रयुक्त किया जाए उसका गेहूँ अच्छी तरह धुला एवं सूखा हुआ होना चाहिए। आज कल श्रावक मर्यादा का तो ध्यान रखते हैं पर गेहूँ धोने एवं सुखाने का ध्यान नहीं रखते। आज विज्ञान का युग है। सभी किसान खादों में कीटाणुनाशक दवाइयों का प्रचुरता से प्रयोग करने लगे हैं। बाजार से जो गेहूँ आता है, उसमें खाद तथा दवाइयों का अंश मौजूद रहता ही है, जो अशुद्ध एवं अभक्ष्य है, एवं वह स्वास्थ्य के लिए हानिकारक भी है। इसलिए सभी डॉ. भी आज यही कहने लगे हैं कि गेहूँ धोकर ही काम में लेना चाहिए। लेकिन आज का श्रावक इन कामों में बड़ा प्रमादी है, वह गेहूँ धोने व सुखाने के पचड़े में नहीं पड़ना चाहता है, यदि कुछ समझदारी भी है तो गेहूँ को गीले कपड़े से पोछ लेता है। जो कि बिल्कुल अनुचित है। ऐसा आटा आहार के कदापि योग्य नहीं होता।

5. मसाले आदि - भोजन में प्रयोग में लाये जाने वाले मसाले धुले एवं सूखे हुए होने चाहिए और इनकी मर्यादा आटे के बराबर है, इसका भी ध्यान रखना चाहिए। आजकल मसाला धोने का रिवाज बिल्कुल उठ गया है, जो कि अनुचित है। उसकी शुद्धि का पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। आहार के बाद जो मंजन किया जाता है वह भी अमर्यादित और अशुद्ध प्रयोग में लिया जाने लगा है, इसकी मर्यादा भी मसालों के बराबर ही है (यदि



घर का बना मंजन है तो), बाजार का तो अशुद्ध ही है।

6. अचित्त फल - फलों को अचित्त करने का तरीका यह है कि फल को गर्म पानी में 10 मिनट तक पड़ा रहने दिया जाए, तदुपरान्त उसको निकालकर फिर प्रयुक्त किया जाए। लेकिन यह विधि लोग काम में नहीं लाते। अक्सर श्रावक जन केले, सेव आदि को गर्म पानी से धोकर इस्तेमाल करते हैं, या कुछ लोग फलों का छिलका हटाकर टुकड़े-टुकड़े करके एक-दो मिनट आग के ऊपर रखकर शुद्ध मान लेते हैं, जो विधि आगम सम्मत नहीं है। फल 10 मिनट तक गर्म पानी में डालने के बाद ही अचित्त होता है। कुछ लोग कहते हैं गर्म पानी में डालने से फल मुलायम पड़ जाते हैं व उनमें स्वाद नहीं रहता है, उनसे मेरा निवेदन है कि वे स्वाद को दृष्टि में न रखकर भोजन शुद्धि को दृष्टि में रखें। अन्यथा अहिंसा महाव्रत नहीं पल सकेगा।

7. वस्त्र शुद्धि संबंधी - आहार के लिये प्रयोग में लाये जाने वाले वस्त्र धुले हुए शुद्ध होने चाहिए। आजकल देखा जाता है कि जितने दान देनेवाले हैं, वे अक्सर अपने पहने हुए वस्त्र उतारकर धोती-दुपट्टा पहिन लेते हैं, जो कि अनुचित है। हमें शरीर से सारे वस्त्र उतारकर गीले अँगोछे से शरीर पोछकर फिर शुद्ध कपड़े पहनने चाहिए। एवं जिन कपड़ों से हम कभी भी लघुशुंका आदि गये हों उन कपड़ों को पहनकर कभी आहार नहीं देना चाहिए।

एक बात और देखी जाती है, आहार बनाते समय माताएँ बहुत सारे व्यंजन जैसे-गोलगप्पा, रसगुल्ला व

विभिन्न प्रकार मिठाइयाँ आदि गरिष्ठ भोजन अपने चौकों में बनाने लग जाती हैं, व बनाते समय हड़बड़ी करती हैं, जिससे अशुद्धियाँ होती हैं और आहार देते समय साधुओं को अक्सर अन्तराय आ जाता है। भोजन की कच्ची सामग्री की अशुद्धि को भी अनदेखा कर देते हैं, जिससे साधुओं की साधना में साधक सिद्ध न होकर उल्टा बाधक बन जाता है। हम अपने घरों में, अपने लिए एक दाल, दो साग, और सलाद बनाते हैं, लेकिन साधु को गरिष्ठ आहार कराते हैं व विभिन्न पकवान खिलाते हैं, जिससे कि साधु को आलस्य व प्रमाद घेर लेता है और वह आहार साधु के सामायिक, स्वास्थ्य आदि में बाधक सिद्ध हो जाता है। हमें चाहिए कि हम साधुओं को हल्का-फुल्का शुद्ध मर्यादित भोजन करावें, जो कि हमारे लिए पुण्योपार्जन में साधक हो तथा साधु को भी अपनी साधना में साधक हो।

निवेदन - विभिन्न संघों में निरन्तर जाते रहने से मेरे मन में भोजन की अशुद्धि को लेकर जो वेदना हुई है, मैंने यहाँ उसी का वर्णन किया है मुझे आशा ही नहीं पूर्ण विश्वास है कि श्रावकजन भोजन की शुद्धि का पूर्णरूपेण ध्यान रखने का प्रयास करेंगे। मैंने तो गुरुओं से यह सीखा है कि जो अशुद्ध वस्तु है, उसे न देना अच्छा है। यदि आहार देना है तो कम सामान बनायें, लेकिन शुद्ध बनावें और उपर्युक्त घी आदि वस्तुएँ शुद्ध हों तभी दें अन्यथा नहीं।

संघीजी जैन मंदिर  
सांगानेर (जयपुर)

## राजुल गीत

श्रीपाल जैन 'दिवा'

सखी री अन्तर अँखियाँ रोय।

सखी सुन अन्तर अँखियाँ रोय।

मोती झरते झपे पलक नहिं नयना कैस सोय?

चिन्तन का आराध्य निरंतर, टप-टप मोती धोय।

प्रक्षालन से नव छवि निखरे, अपलक अँखियाँ जोय।

अष्ट द्रव्य भावों के लाई, पल-पल पूजन होय।

करुणा जब साकार हो गई, समता पुलकित होय।

निदय हृदय कैस कह दूँ मैं, जग तारक जो होय।

राजुल मन माने की बात।

सखी री मन माने की बात।

जिन को अब तक राग रिझाया, मधुरस्वप्न दिन रात।

मन पगला राजुलमय होकर, लाये नेम बरात।

पशु-पुकार की बेटी करुणा, जीत दे गई मात।

मन तो कहता हार हो गई, आतम मत अनजात।

झूल रहा झूला मन वेदन, वैभव सुख मुरझात।

पर आतम सँग मन फिर कहता, असल विरागी जात।

शाकाहार सदन

एल. 75, केशर कुंज, हर्षबर्द्धन नगर, भोपाल-3

# आर्यिका-नवधाभक्ति प्रकरण

पं. मूलचन्द्र लुहाड़िया

उक्त प्रकरण पर लिखे गए मेरे एक लघु लेख को जैन गजट के 51वें अंक में मोटे अक्षरों में की गई बृहत् संपादकीय टिप्पणी के साथ प्रकाशित किया गया है। पत्रिका के विद्वान सम्पादक जी ने अपनी टिप्पणी देकर विवादास्पद विषयों पर आगम के आधार पर वीतराग चर्चा के द्वार खोले हैं। मैं उन्हें इस महानता के लिए साधुवाद देता हूँ।

यदि ऐसे धार्मिक विषयों पर लिखे गए लेखों में कदाचित् परस्पर आरोप प्रत्योरोप एवं निदात्मक/ व्यंगात्मक शब्दों का सहारा लिया जाता है तो वह विसंवादिनी कथा का रूप ले लेता है, जो अवांछनीय तो है ही साथ ही धर्म की अप्रभावना का भी कारण हो जाता है। काश, हम लोग पक्षाग्रह से ऊपर उठ कर नयसापेक्ष दृष्टि से वस्तु स्वरूप को देखने, प्ररूपण करने एवं ग्रहण करने के अभ्यासी बनें, तो ऐसी चर्चाएँ परस्पर संवादसर्जन में समर्थ हो सकेंगी।

आइए हम सम्माननीय संपादकजी द्वारा की गई टिप्पणी पर आगम के परिप्रेक्ष्य में विचार करें।

यह ठीक है कि जयोदय काव्य के श्लोक 2/95 की टीका में “धर्म पात्र दिगम्बर साध्वादि” लिखा है। यह भी ठीक है कि इस में ‘आदि’ शब्द से आर्यिका का ग्रहण होता है। यहाँ केवल आर्यिका ही नहीं, अपितु क्षुल्लक, ब्रह्मचारी, देशव्रती आदि के साथ-साथ सम्यग्दृष्टि का भी ग्रहण होता है। ये सभी धर्मपात्र माने जाते हैं। किन्तु इन सभी धर्मपात्रों का संतर्पण एक ही प्रकार की सामग्री से एवं एक ही प्रकार की विधि से नहीं किया जाता है। गृहस्थ को स्वविवेक से पात्रों के पदानुकूल यथायोग्य विधि से तथा यथायोग्य सामग्री से संतर्पण करना चाहिए। इस श्लोक में सभी धर्मपात्रों तथा कार्यपात्रों के संतर्पण की बात लिखी है, किन्तु यह कहीं नहीं लिखा है कि सबका समान प्रकार से संतर्पण करना है।

श्लोक सं. 95 में केवल यतियों (मुनियों) को नवधा भक्ति पूर्वक दान देने की बात कही गई है। स्वोपज्ञ टीका में स्पष्टतः “यतिषु” “यातिनां साधूनां गणः समूहो” लिखा है। यहाँ आर्यिकाओं का कोई प्रसंग नहीं है। यतियों को भोजन तथा वस्त्रपात्रादि उपकरण प्रदान करने का उपदेश दिया गया है। वस्त्र मुनियों को शास्त्र सुरक्षा के लिए ही दिया जा सकता है, पहिने के लिए नहीं। शरीर ढकने के लिए लिया हुआ वस्त्र परिग्रह

माना जायेगा और शास्त्र सुरक्षादि कार्य के लिए प्रदत्त वस्त्रों को उपकरण कहा जायेगा। श्वेताम्बर एवं दिगम्बर मान्यताओं में यही मौलिक अन्तर है। श्वेताम्बर ग्रंथों में साधु के लिए 14 उपकरण ग्राह्य माने गये हैं, जिनमें वस्त्र भी एक है। वे कहते हैं कि साधु वस्त्र उपकरण के रूप में पहनते हैं इसलिए वस्त्र उनका परिग्रह नहीं है। जिस प्रकार पीछी कमंडल उपकरण होने से परिग्रह नहीं है, उसी प्रकार वस्त्र भी उपकरण होने से परिग्रह नहीं है।

सम्पादकीय टिप्पणी का यह अंश “आर्यिका की साड़ी परिग्रह नहीं उपकरण ही है, क्योंकि आगम में शक्यानुष्ठान के रूप में उनके लिए उसकी अनुमति दी है” पढ़कर किस दिगम्बर जैन धर्म के श्रद्धालु व्यक्ति को आश्चर्य एवं दुःख नहीं होगा? यदि आर्यिका की साड़ी उपकरण है, तब तो आर्यिका भी मुनिवत् अपरिग्रहमहाव्रती अर्थात् सकल संयमी हो गई। प्रकारांतर से यह श्वेताम्बर मान्यता की स्थापना एवं दिगम्बर मान्यता का उच्छेद है। अपने पक्ष के अंधसमर्थन में कभी-कभी हम अपने मौलिक सिद्धांतों के संरक्षण की भी अवहेलना कर बैठते हैं।

जिस वस्तु से आत्मा का (संयम का) उपकार होता है उसको उपकरण कहते हैं। किसी भी वस्तु के परिग्रह होने अथवा उपकरण होने का निर्णय उसके उपयोग के आधार पर होता है। यदि शारीरिक सुविधा प्रदान करने वाली वस्तुओं को भी उपकरण मान लिया जायेगा, तो सभी भोगोपभोग की सामग्री उपकरण की परिधि में आ जायेगी। पीछी-कमंडलु का उपयोग केवल जीवरक्षा एवं मलशुद्धि के लिए किया जाता है, इसीलिए वे उपकरण की श्रेणी में आते हैं। किन्तु यदि पीछी का उपयोग सफाई के लिए झाड़ू लगाने एवं कमंडलु के जल का उपयोग पीने अथवा शरीर का मैल दूर करने में किया जायेगा, तो वे परिग्रह माने जायेंगे। मुनियों के लिए तीन प्रकार के उपकरण ग्राह्य बताए गए हैं। संयमोपकरण (पीछी), शौचोपकरण (कमंडलु) तथा ज्ञानोपकरण (शास्त्र)। अतः मुनि महाराज को भेंट किए जाने वाला वस्त्रोपकरण केवल शास्त्र के वेष्टन के रूप में ही ग्रहण हो सकता है। इसके अतिरिक्त श्लोक 95 में आर्यिकाओं की साड़ी तो शरीर के आवरण एवं सुरक्षा के लिए पहनी जाती है अतः वह तो निर्विवाद रूप से परिग्रह ही है, उपकरण कदापि नहीं। यदि वस्त्र को उपकरण मान लिया जाये, तो सवस्त्र साधु को सकल संयम एवं परिणाम स्वरूप मुक्ति की सिद्धि

स्वयमेव हो जायेगी और तब दिगम्बर जैन धर्म के मौलिक सिद्धांतों का मूलोच्छेद हो जायेगा।

वस्त्रपरिग्रह-ग्रहण आर्थिकाओं की पर्यायगत बाध्यता है। इसीलिए वे वास्तव में महाव्रती नहीं हो सकतीं। सचेतत्व के कारण उन्हें सकलसंयम नहीं हो सकता। सकलसंयम के अभाव में दिगम्बर मान्यता में स्त्री मुक्ति स्वीकृत नहीं है। किंतु वस्त्र को उपकरण मानने वाले श्वेताम्बर सचेल दशा में भी सकल संयम का सद्भाव मानकर वस्त्र मुक्ति एवं स्त्री मुक्ति का समर्थन करते हैं।

संपादकीय टिप्पणी के आगे का वाक्य “उत्तम पात्र के रूप में गणनीय आर्थिका के आदर सत्कार के बारे में इस कथन के बाद कोई उहापोह होना ही नहीं चाहिए” पुनः दिगम्बर जैन धर्म की मान्यता के सर्वथा विपरीत है। पात्रों के भेद विभाजन में सभी दिगम्बर परंपरा के ग्रंथों में मात्र दिगम्बर जैन मुनि को ही उत्तम पात्र की श्रेणी में परिगणित किया गया है। आर्थिका वस्तुतः देशव्रती है, पंचम गुणस्थान वर्ती है अतः वे मध्यम पात्र की श्रेणी में आती हैं। आर्थिका को उत्तम पात्र बनाकर क्या हम प्रकारांतर से स्त्रीमुक्ति की सिद्धि नहीं कर रहे? वस्त्रमुक्ति-निषेध एवं स्त्रीमुक्ति-निषेध ये दो ही दिगम्बर जैन धर्म के प्राणरूप सिद्धांत हैं। क्या वस्त्र को उपकरण कहकर एवं आर्थिका को उत्तम पात्र बताकर हम अपने पावों पर कुल्हाड़ी मारने का अपराध नहीं कर रहे हैं?

आर्थिका माताओं के आदर सत्कार के संबंध में किसको उहापोह है? आदर सत्कार तो सभी पात्रों का यथायोग्य विधि से आगम सम्मत है। वस्तुतः विवेकपूर्ण भक्ति ही समीचीन भक्ति है। पात्रों की यथायोग्य भक्ति न करना जिस प्रकार वाछनीय नहीं है, उसी प्रकार भक्ति का अतिरेक भी वाछनीय नहीं कहा जा सकता है।

मुनि महाराज का गुणस्थान छठा-सातवाँ है जबकि आर्थिका माताजी का गुणस्थान 5वाँ है। जब एक ही गुणस्थान वाले श्रावक, ब्रह्मचारी, क्षुल्लक, ऐलक, आर्थिका आदि में पूजा सत्कार की विधियों में अंतर रखा जाता है, तो क्या पाँचवें गुणस्थान वाली आर्थिका और 6-7वें गुणस्थान वाले मुनि महाराज की पूजा सत्कार की विधि में अंतर नहीं करेंगे? मुनि महाराज की गणना पंच परमेष्ठियों में है। जबकि आर्थिकाएँ तो देशव्रती होती हैं। अतः वे परमेष्ठी नहीं मानी जातीं। आर्थिकाओं को उपचार से महाव्रती कहा गया है। उपचार से कहने का अर्थ है कि वे वास्तव में महाव्रती नहीं हैं। बृहज्जिनोपदेश (लेखक पं. जवाहरलालजी शास्त्री) में शंका समाधान सं. 558 निम्न प्रकार है -

558 शंका-आर्थिका तो महाव्रती है न?

**समाधान** - उपचार में आर्थिका को (उनकी अन्तिम योग्यता से उनके युक्त होने से) महाव्रती कहा जा सकता है। वास्तव में देशव्रती हैं।

सवस्त्र दशा में संयम का निषेध प्रकारांतर से सवस्त्र मुक्ति का निषेध एवं स्त्री मुक्ति का निषेध दिगम्बर मान्यता के मूलभूत सिद्धांत हैं, जिनकी किसी भी मूल्य पर स्थापना एवं सुरक्षा प्रत्येक दिगम्बर जैन धर्मावलम्बी का कर्तव्य है। भगवान आदिनाथ से लेकर भगवान महावीर तक तीर्थंकर भगवंतों द्वारा प्रतिष्ठापित एवं इस युग के आचार्य कुंदकुंद, समंतभद्र, विद्यानंद, अकलंक, अमृतचंद्र प्रभृति महान प्रभावक आचार्यों द्वारा प्रचारित दिगम्बर जैन धर्म के मूल सिद्धांतों पर किसी पक्ष विशेष के व्यामोह में हम स्वयं आघात करने लगेंगे, तो यह आत्मघाती प्रवृत्ति अपने आप को नष्ट कर देने का उद्यम सिद्ध होगी।

आर्थिकाओं की नवधा भक्ति का आग्रह रखने वाले पक्ष से उनके प्रति यथायोग्य भक्ति की व्यवस्था का समर्थक पक्ष आर्थिकाओं की भक्ति एवं उनके सम्मान-सत्कार में किसी भी प्रकार पीछे नहीं है। बल्कि सत्य तो यह है कि द्वितीय पक्ष इस दिशा में प्रथम पक्ष से अधिक जागरूक है। तथापि द्वितीय पक्ष पर आर्थिकाओं को अपूज्य ठहराने का मिथ्या आरोप एक अत्यंत अवांछनीय छल पूर्ण प्रवृत्ति है और जनसाधारण के समक्ष मिथ्या चित्रण प्रस्तुत कर द्वितीय पक्ष की छवि धूमिल करने का दुष्प्रयास है जिससे हमें बचना चाहिए।

सुयोग्य संपादकजी ने जो संवादपरक चर्चा का मार्ग खोला है उसका हम सब को स्वागत करना चाहिए और इस दिशा में वीतराग चर्चा के माध्यम से विचारों का आदान-प्रदान करते रहना चाहिए।

लुहाड़िया सदन जयपुर रोड़  
मदनगंज-किशनगढ़-01 (राज.)

## मुनि श्री क्षमासागरजी श्री महावीरजी में विराजमान

परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज के सुशिष्य पूज्य मुनि श्री क्षमासागरजी दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी में विराजमान हैं।

सुरेश जैन  
आई.ए.एस.

# सुगन्धाकरमस्ति सदा हि शास्त्रम्

वृषभप्रसाद जैन

मान्यता है कि “शास्त्र से रक्षा होती है”, पर यह कथन सार्वकालिक सत्य नहीं है; शास्त्र जहाँ रक्षा करता है पर वहीं उसका सम्यक् स्थान पर प्रयोग न हो, सम्यक् बोध के साथ उसका चलना चूक जाए तो वही रक्षक-शास्त्र प्राणहन्ता भी बन जाता है, इसीलिए शास्त्र रक्षक होने के साथ-साथ कभी-कभी भक्षक भी बनता है, पर शास्त्र की स्थिति शास्त्र के इस स्वरूप से ठीक उल्टी है। इसीलिए हमारी भारतीय मनीषा ने शास्त्र को शास्त्र से बड़ा माना और इसे सर्वथा रक्षक, उद्धारक तथा उन्नतिकारक माना है, क्योंकि शास्त्र कभी भी किसी भी वर्ग की हानि को केन्द्र में रखकर रचा नहीं जाता, बल्कि शास्त्र बनता ही तब है, जब वह वर्ग-भेद, जाति भेद, जन्म भेद, रूप-भेद, आदि-आदि भेदों से ऊपर उठकर/रहित होकर सामान्य जनमानस की समृद्धि की बात करे, आज ऐसे शास्त्रों के रचे जाने की परम्परा दुर्लभ होती जा रही है। उसके उन्नयन की बात करे, आज ऐसे शास्त्रों के रचे जाने की परम्परा दुर्लभ होती जा रही है। शास्त्र जोड़ने के लिए नहीं, खेमों में बाँटने के लिए रचे जाने लग गए हैं, आदमी को आदमी से अलग करने के लिये रचे जा रहे हैं, इसीलिए तो सही मायने में पूछिये तो वे शास्त्र हैं ही नहीं, पर बराबर उनके शास्त्र होने का उद्घोष किया जा रहा है। ‘ज्ञानसागर’ में शास्त्र का रूपक दीपक से दिखाया गया है और कहा गया है कि जैसे किसी लक्ष्य पर पहुँचने के लिए ज्ञानीजन को सम्यक् प्रकाश में दिखने वाले सम्यक् मार्ग से जाना पड़ता है, ठीक वैसे ही शास्त्र दीपक के बिना जड़ अज्ञानी जीव अज्ञात मार्ग पर दौड़ने लग जाते हैं, इसका परिणाम यह होता है कि उन्हें स्थान-स्थान पर ठोकर खानी पड़ती है और एक समय ऐसा आता है कि वे परम कष्ट/क्लेश और दुःख को प्राप्त करते हैं और फिर उससे कभी उबर नहीं पाते। यथा-

अदृष्टार्थेऽनुधावन्तः, शास्त्र-दीपं बिना जडाः।  
प्राप्नुवन्ति परं खेदं, प्रस्खलन्तः पदे पदे।।

ज्ञानसागर, 24/5

हमारी परंपरा में शास्त्र की उपमा “माँ” से दी गयी है। आचार्यों ने कहा है कि जिस प्रकार माँ बच्चे का लालन-पालन करती है, पोषण करती है और निरन्तर अपने पुत्र को बड़ा बनाने के लिये यत्न करती है, ठीक वही काम शास्त्र को करना होता है और जो शास्त्र यह काम नहीं करता शास्त्र कहलाए जाने का अधिकारी नहीं

है। जब-जब पुत्र संकट में पड़ता है तो माँ उसे किसी न किसी रूप में याद आती है और माँ भी उसकी रक्षा ही के लिए खड़ी हो जाती है। इतना नहीं, जैसे प्यासे को जल पिला दिया जाए, तो उसकी प्यास हर ली जाती है, वैसे ही वह अपने पुत्र के सारे सन्ताप को अपने हाथ के स्पर्श से दूर कर देती है; इसीलिए माँ का हस्त-स्पर्श प्यासे व्यक्ति को प्राप्त हुई जलधारा के समान है। यही कारण है कि हमारी परंपरा में कुमाता की संकल्पना ही नहीं है और जहाँ भी यह कुमाता हुई तो माता ही नहीं रह गयी। जैन पद्मपुराण के रचयिता आचार्य रविषेण कहते हैं -

“शास्त्रमुच्यते तद्धि यन्मातृवच्छास्ति सर्वस्मै जगते हितम्।”

पद्मपुराण, 11/209

शास्त्र वह कहलाता है, जो माता के समान सारे संसार के हित के लिए उपदेश दे, जिसने किसी भी खेमेविशेष की भलाई की बात की और बाकी के अकल्याण की तो वास्तव में उसने उस खेमे की भलाई की भी बात नहीं की होती है; क्योंकि मानव का कोई भी समुदाय दूसरे समुदाय से पूरी तरह अलग होकर रह ही नहीं सकता, उसकी सत्ता, अस्मिता सबके साथ है, दूसरों के साथ है, मानव जगत् ही नहीं, कई बार जड़ जगत् को भी साथ लेकर उसे चलना होता है।

जैन परम्परा में जो तीन उपास्य माने गये हैं वे हैं देव, शास्त्र और गुरु। इस उपास्यत्रयी के मध्य में शास्त्र है, ऐसा क्यों? मुझे लगता है कि इसका एक ही उत्तर है; वह यह कि शास्त्र ही निकष के वे पैमाने सुझाता है या जिसमें वे मानक सुरक्षित हैं, जिनके आधार पर देव को हम “देव” या गुरु को “गुरु” मान पाते हैं, अन्यथा हम ऐसे भटकते हैं कि भटकते रह जाते हैं; इसीलिये शास्त्र के आधार पर देव और गुरु दोनों की पहचान होती है। यही कारण है कि जैन परम्परा में शास्त्र को उपास्यत्रयी के बीच में रखा गया है। वहाँ तो कविवर घानतराय और भी कहते हैं -

रवि शशि न हरै सो तम हराय,  
सो शास्त्र नमो बहु प्रीति ल्याय।

सारा संसार अंधकारमय है, जहाँ देखें वहाँ तक ही तम घिरा हुआ है, लैम्प जल रहे हैं, लाइटों जल रही हैं, भाँति-भाँति के प्रकाशक जल रहे हैं, पर वे सब बौने हैं-सूर्य और शशि के प्रकाश के सामने, लेकिन सूर्य और शशि का प्रकाश भी छोटा हो जाता है शास्त्र के

आलोक के सामने। चूँकि सूर्य तो केवल दिन में प्रकाश फैलाता है और चन्द्रमा चाँदनी में ही/रात्रि में ही, पर शास्त्र तो ऐसा है कि जब उसके सान्निध्य में बैठ जाया जाए, तभी उज्वला बिखरने लगता है, तभी अपनी किरणों से अज्ञानांधकार को दूर करने लग जाता है; न रात उसे बाँध सकती है, न दिन उसे रोक सकता है, इसीलिए शास्त्र की वन्दना करना अनिवार्य है। बड़ी प्रीति के साथ उसके साथ जुड़ना जरूरी है; तभी कल्याण है। हमारी परम्परा में शास्त्र को श्रुत कहा गया है, जिनवाणी भी कहा गया है और सरस्वती भी। इसीलिए एक भक्त शास्त्र को मूर्त रूप में देखता है और कहता है-

देवि श्री श्रुतदेवते भगवति त्वत्पाद-पङ्करुह  
द्वन्द्वे यामि शिलीमुखत्वमपरं भक्त्या मया प्रार्थ्यते ।  
मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिन-मुखोद्भूते सदा त्रिहि मां  
दृग्दानेन मयि प्रसीद भवती संपजूयामोऽधुना ॥

देवशास्त्रगुरु-पूजन

हे देवि! हे भगवति! जिस प्रकार भौरा कमल के चहुँ ओर भटकता रहता है, उसी प्रकार तेरे चरणकमलों के प्रति मुझे आसाकित है; हे माता! मेरी प्रार्थना है कि तुम सदा मेरे चित्त में बनी रहो; हे जिन-मुख से उत्पन्न जिनवाणी! तुम सदा मेरी रक्षा करो और मेरी ओर देखकर मुझ पर प्रसन्न होओ, मैं आपकी पूजा करता हूँ, उपासना करता हूँ। हनुमन्नाटक में उल्लेख आता है -

यद्यपि क्षितिपालानामाज्ञा सर्वत्रगा स्वयम् ।  
तथापि शास्त्र-दीपेन संचलन्त्यवनीश्वराः ॥

हनुमन्नाटकम्, 11/19

अर्थात् क्षितिपालों, भूपालों, राजाओं की आज्ञा सर्वत्र प्रमाण मानी जाती है, पर नाटककार कहते हैं कि राजा के लिए यही उचित है कि वह शास्त्र की आज्ञा से चले; पर जो राजा शास्त्र की आज्ञा में नहीं चलता, उसका विनाश सुनिश्चित है, क्योंकि शास्त्र में किसी एक जीवन का नहीं, किसी एक शासनतंत्र का नहीं, जीवनो का/शासनतंत्रों का, उनकी श्रृंखला का निचोड़ निबद्ध है और मनुष्य की बुद्धि की सीमा है, वह एक जन्म में किये गये अनुभव के आधार पर अनेक जन्मों के/अनेकतंत्रों के अनुभवों को कैसे अनुभूत कर पाएगा अर्थात् नहीं कर पाएगा।

महर्षियों ने शास्त्र की तुलना एक ऐसे महामंत्र से की है, जो सर्पदंश के विष को उतारने के लिए प्रयुक्त होता है। भाव यह है कि मानव-जीवन में कितना ही भयंकर कष्ट क्यों न हो जाए, कितना ही दारुण दुःख क्यों न आ जाए, कितना ही तीक्ष्ण विष क्यों न प्रवेश पा जाए, पर जैसे ही सम्यक् महामंत्र रूपी औषधि का प्रयोग उस पर होता है, वह विष, दुःख, कष्ट क्षणमात्र में दूर हो जाता है। हमारे शास्त्र इस औषधि के रूप

में हैं। यहीं आगे महर्षि और कहते हैं कि स्वच्छन्दता रूप ज्वर को दूर करने के लिए हमारे शास्त्र उपवास की तरह हैं और धर्म-ध्यान को सींचने के लिए अमृत-सरणि के समान। उपवास का कोई धार्मिक महत्त्व माना जाय या न माना जाय, पर आज चिकित्सक यह मानने लगे हैं कि मधुमेह जैसी असाध्य बीमारी में भी यदि दो-चार दिन भी उपवास कर लिया जाय तो वह उपवास एकदम रोगी के रक्त-शर्करा अंश को नीचे लाकर गिरा देता है और उससे होने वाले सारे संताप दूर होने लगते हैं-

अज्ञानाहि महामन्त्रं, स्वाच्छन्द्यज्वरलङ्घनम् ।  
धर्मरामसुधाकुल्यां, शास्त्रमाहुर्महर्षयः ॥

ज्ञानसार, 24/6

एक उल्लेख आता है-'पुस्तकी भवति पण्डितः' का, जिसका मन्तव्य है-जिसके पास पुस्तकें हों वह पण्डित होता है; पर यहीं सवाल उठता है-पुस्तकालय पुस्तकें रखते हैं तो क्या पुस्तकालय को पण्डित मानने लग जाँएँ या कोई वाहक पुस्तकें अपनी पीठ पर लादे हुए हो तो उसे पण्डित मानने लग जाँएँ? वास्तव में शास्त्र के भीतर आलोड़न की जरूरत होती है, केवल देखने-भर से काम नहीं चलता। इसीलिए तो हितोपदेश में यह कहा गया है कि अच्छी तरह से विचारी गई औषधि के नामोच्चारण मात्र से, जिस प्रकार रोगी का रोग नष्ट नहीं होता, ठीक वैसे ही शास्त्र को लादने-भर से रोग का परिहार नहीं होता, उसके भीतर आलोड़न की जरूरत है, आलोड़न के बाद जो रस निकले वह उस के पान की जरूरत है, जिस क्रिया से रस निकले उस क्रिया को करने की जरूरत है। यदि वह क्रिया न की गई तो सारा आलोड़न व्यर्थ है, सारा संपर्क व्यर्थ है।

शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः यस्तु क्रियावानुरूपः स विद्वान् ।  
सुचिन्तितं चौषधमातुराणां न नाममात्रेण करोत्यरोगताम् ॥

हितोपदेश, 1/63

अब सवाल उठता है कि शास्त्र में प्रवेश कैसे हो? क्या हर व्यक्ति का शास्त्र में प्रवेश हो जाता है या हर व्यक्ति शास्त्र में प्रवेश कर सकता है? शुक्रनीति कहती है कि नहीं, यह संभव नहीं, क्योंकि नीति का मूल विनय में है, शास्त्र में श्रद्धा होने से, आस्था होने से विनयशील व्यवहार आता है; और विनयशील व्यवहार इन्द्रियों पर विजय प्राप्त कराता है। बिना इन्द्रियों पर विजय प्राप्त किये शास्त्रज्ञान संभव नहीं, अतः जो इन्द्रियविजयी है, उसे ही शास्त्रज्ञान संभव है, अन्य को नहीं। इसलिए पहले अपनी इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करें, अपनी इन्द्रियों को अपने साथ चलाना सीखें, तभी शास्त्र में प्रवेश कर पाँएँगे, अन्यथा शास्त्रज्ञान संभव नहीं।

नयस्य विनयो मूलं विनयः शास्त्रनिश्चयात् ।  
विनयस्येन्द्रियजयस्तुद्युक्तः शास्त्रमृच्छति ॥

शुक्रनीति, 1/91

चाणक्य कहते हैं कि शास्त्रज्ञ दरिद्र भी हो तो अच्छा है, क्योंकि उसके मन में जो बाहरी अर्थ है, पैसा है, उसका बहुत महत्त्व नहीं है, इसीलिए उनकी मान्यता है कि जो धनिक होकर भी ज्ञान और शील से रहित है, वह अच्छा नहीं; क्योंकि जिस प्रकार अच्छे यौवन और रूपवाला व्यक्ति शरीर पर कम वस्त्रों और आभूषणों को धारण करने पर भी शोभा को प्राप्त हो जाता है, पर इसके ठीक विपरीत कोई अन्धा है और स्वर्णभूषणों से अलंकृत है तो भी वह उसकी तरह शोभा नहीं पा पाता है, इसीलिए शास्त्रज्ञ होने के मानक बड़े तीखे हैं -

वरं दरिद्रः श्रुतिशास्त्रपाठको, न चार्थयुक्तः श्रुतिशील-वर्जितः ।

सुलोचनः क्षीणपरोऽपि शोभते, न नेत्रहीनः कनकाद्यलङ्कृतः ॥

चाणक्य, 2/8

शास्त्र निरन्तर अन्तःकरण में परिशोधन का कार्य करते हैं, जिस प्रकार जल के सम्पर्क से मैला अपने आप कट जाता है, दूर चला जाता है, ठीक वैसे ही शास्त्र से अन्तःकरण धुल जाता है। शास्त्र के बारे में एक और महत्त्वपूर्ण मान्यता है कि शास्त्र के सम्पर्क में जो आता है, उसकी यश-गन्ध दूर-दूर तक फैल जाती है; यही नहीं, शास्त्र को स्वयं भी सुगन्ध का आकर माना गया है, उसमें कभी दुर्गन्ध नहीं आती, क्योंकि उसमें सर्वहित का भाव है, सर्वकल्याण का भाव है; इसीलिए आचार्यों का मन्तव्य रहा है कि -

सुगन्धाकरमस्ति सदा हि शास्त्रम्।

ए-1/12, सेक्टर-एच  
अलीगंज, लखनऊ

बोधकथा

## भक्त की भक्ति

भक्त और भक्ति के मध्य कोई न कोई उपास्य भगवान् अवश्य होता है जो भक्ति से भक्त पर प्रसन्न होता है। एक बार भगवान् ने भक्त की भक्ति से प्रभावित होकर उससे पूछा-भक्त! बोलो तुम क्या चाहते हो? भक्त ने उत्तर दिया भगवान्! मैं अपने लिए कुछ नहीं चाहता। बस यही चाहता हूँ कि दुखियों के दुख दूर हो जायें। भगवान् ने कहा 'तथास्तु'। अब ऐसा करो, जो सबसे अधिक दुखी हो उसे यहाँ लाओ। भक्त बहुत खुश था कि इतने दिनों की भक्ति के उपरान्त यह वरदान मिल गया। उसने सोचा यह बहुत अच्छा हुआ। अब मैं एक-एक करके सारी दुनियाँ को सुखी कर दूँगा।

भक्त चल पड़ा दुखी की खोज में । वह एक-एक व्यक्ति से पूछता जाता है। सब यही कहते हैं, और तो सब ठीक है बस एक कमी है और इस कमी में कोई पुत्र की कमी बताता, तो कोई धन की तो कोई मकान या दुकान की। पूर्ण कमी है मुझे, ऐसा उसे किसी ने नहीं बताया।

वह आगे बढ़ा। चलते-चलते देखा उसने कि एक कुत्ता नाली में पड़ा तड़फ रहा है, वह मरणोन्मुख है। उसने उसके निकट जाकर पूछा-क्यों क्या हो गया है? कुत्ते ने कहा मैं बहुत दुखी हूँ, भगवान् का भजन

करना चाहता हूँ। भक्त ने सोचा यह सचमुच में बहुत दुखी है, इसे ले चलना चाहिए। उसने कुत्ते से कहा-तुम दुःख से मुक्त होना चाहते हो तो चलो, तुम स्वर्ग चलो, वहाँ पर सुख ही सुख है। मैं तुम्हें वहाँ अभी ले चलता हूँ।

कुत्ते ने कहा बहुत अच्छा! पर यह तो बताओ कि वहाँ क्या-क्या मिलेगा? भक्त ने सभी सुख सुविधाओं के मिलने का आश्वासन दिया। तब आश्वस्त होकर कुत्ते ने कहा कि ठीक है, चलते हैं किन्तु एक बात और पूछना है। भक्त ने कहा पूछो क्या पूछना है। कुत्ते ने कहा-यह तो बताओ स्वर्ग में ऐसी नाली मिलेगी या नहीं? भक्त हँसने लगा। उसने कहा-ऐसी नाली स्वर्ग में नहीं है। तब फौरन कुत्ता बोला कि नाली नहीं है तो फिर क्या फायदा स्वर्ग जाने से। मुझे यहीं रहने दो, यहाँ पर जरा ठंडी-ठंडी लहरें तो आती हैं।

अब सोचिये कैसी यह मूर्छा है। हम सुख चाहते हैं पर परिग्रह नहीं छोड़ना चाहते हैं परिग्रह में और लिपटते चले जाते हैं, ऐसे जैसे रेशम का कीड़ा लार उगलकर उससे ही निज शरीर को स्वयं आवेष्टित करता चला जाता है। यदि भावों की सँभाल हो तो मूर्छा तोड़ी जा सकती है।

# राष्ट्रपति सहस्राब्दी पुरस्कार सम्मान मेरा नहीं, बल्कि प्राकृत एवं जैनविद्या तथा जैन पाण्डुलिपियों का सम्मान है

प्रो. (डॉ.) राजाराम जैन

30 अगस्त सन् 2000 की वह तिथि मेरे जीवन की सर्वाधिक सुखद घड़ी थी जब भारत सरकार ने मानव संसाधन विभाग के संयुक्त शिक्षा सलाहकार डॉ. पी.सी.एच. सेथुमाध्वराव का मुझे हार्दिक बधाइयों से भरा हुआ पत्र मिला, जिसमें मुझे यह सूचना दी गई थी कि भारत सरकार की प्रवर समिति की अनुशंसा पर भारत के माननीय राष्ट्रपति जी ने मुझे सहस्राब्दी सम्मान से पुरस्कृत एवं सम्मानित करने का निर्णय लिया है। इसकी सूचना यद्यपि सभी दैनिक समाचार पत्रों एवं समाचार मीडिया से प्रसारित हो चुकी थी किन्तु मैं उन्हें पढ़/सुन नहीं सका था और यदि जयपुर में हमारे स्नेही मित्र प्रो. डॉ. प्रेमचन्द्र जी जैन (राजस्थान विश्व विद्यालय) एवं बनारस के मेरे अनन्य मित्र डॉ. फूलचन्द्र जी प्रेमी ने टेलिफोन द्वारा तदर्थ मुझे तत्काल बधाई न दी होती, तो सम्भवतः मैं इस सुखद समाचार से अगले कुछ सप्ताहों तक अनभिज्ञ ही बना रहता।

भारत सरकार राष्ट्रपति-पुरस्कार हेतु चयनित प्राच्य विद्याविद् विद्वानों (संस्कृत, प्राकृत/पालि अरबी एवं फारसी) के नामों की घोषणा प्रतिवर्ष स्वतंत्रता-दिवस (15 अगस्त) के दिन करती है और चयनित विद्वानों को बधाई-पत्र प्रेषित करते हुए उन विद्वानों के कृतित्व एवं व्यक्तित्व को उजागर करने वाले तथ्यमूलक सचित्र जीवन-वृत्त (हिन्दी एवं अंग्रेजी में) भेजने का अनुरोध करती है, जिससे कि उन्हें सचित्र पुस्तकाकार प्रकाशित कर राष्ट्रपति भवन के अशोक-सभागार में पुरस्कार-सम्मान प्रदान करने के अवसर पर पुरस्कृत विद्वानों के साथ-साथ उपस्थित केन्द्रीय मन्त्रियों, शिक्षाविदों एवं प्रतिष्ठित नागरिकों को उक्त पुस्तिका का वितरण किया जा सके।

राष्ट्रपति पुरस्कार प्रदान करने सम्बन्धी भारत सरकार की एक उच्चस्तरीय प्रवर समिति होती है, जो "यू.जी.सी." तथा "यूनिवर्सिटीज आफ इण्डिया" की ईयर बुक (Year Book) में प्रकाशित भारत के सभी शिक्षकों के शोध-कार्यों आदि की मौलिकता तथा विशेषताओं का अध्ययन करती है। पुनः सम्बन्धित विश्व विद्यालयों तथा महाविद्यालयों से सम्बन्धित शिक्षकों की कार्य-प्रणालियों, शिक्षा-पद्धति, संस्था के वर्तमान संचालन में सहयोग, छात्रों एवं शोधार्थियों के मध्य उनकी छवि आदि की जानकारी प्राप्त करती है। पुनः खुफिया-विभाग तथा पुलिस विभाग से भी उनके चरित्र की गोपनीय रिपोर्ट प्राप्त की जाती है। सर्वांगीण जाँच-परख के बाद स्वयं सन्तुष्ट होकर यह प्रवरसमिति सर्वसम्मति से पुरस्कार हेतु राष्ट्रपति जी के लिए उनके नामों की

अनुशंसा करती है।

कभी-कभी व्यक्ति सोचता है कि उसके कार्य-कलापों को कोई देखता नहीं। किन्तु बात ऐसी नहीं, शिक्षक किस-किस संस्था से जुड़ा है, किस राजनीति से जुड़ा है, जिस संस्था का पदाधिकारी है, उसके मूल उद्देश्य क्या हैं? उससे उसका व्यक्तित्व विवादस्पद बना है अथवा विवाद-विहीन, इन सबका लेखा-जोखा व्यक्ति के अनजाने में ही होता रहता है और जब किसी विशिष्ट सम्मान-पुरस्कार प्रदान करने के लिये सूची तैयार होने लगती है, तब उसकी यही छवि निर्णायक मण्डल के सम्मुख पूर्ण विवरण के साथ प्रस्तुत की जाती है।

मेरा भी यही व्यक्तिगत अनुभव है। लगभग 30-35 वर्ष पूर्व की एक घटना है। मेरा एक छात्र खुफिया-विभाग में नौकरी पा गया। हजारों की जमात में कौन सा गुरु अपने हजारों शिष्यों को याद रख सकता है? मैं भी उसे भूल ही गया था। एक दिन वह मुझे कहीं रास्ते में मिल गया। उसने आदर पूर्वक मेरे पैर छुए। फिर उसने अपना परिचय दिया और कहा कि "मैं आपका गरीब शिष्य था। जीवन भर आपका अत्यन्त आभारी रहूँगा। आपने एक दिन किसी प्रसंग में अमेरिका के 16वें राष्ट्रपति अब्राहम लिंकन और वहीं के एक नीग्रो जाति के महान उदार नेता बुकर टेलिफेरो वाशिंगटन तथा बंगाल के ईश्वरचन्द्र विद्यासागर की अत्यन्त गरीबी का उदाहरण देते हुए उनकी आसमानी प्रगति की मार्मिक कहानी अपनी प्राकृत की कक्षा में सुनाई थी और कहा था कि गरीब छात्रों को अपनी गरीबी को कभी भी अभिशाप नहीं, वरदान मानकर दृढ़-संकल्प बनाना चाहिये। आपका यह उपदेश इतना मार्मिक था कि आज मैं उसे भूला नहीं और आज आपकी कृपा से मैं अच्छी सर्विस पा सका हूँ। मैं खुफिया-विभाग में हूँ।"

उसका भावभरित कथन सुनकर मैं आश्चर्यचकित रह गया। मैंने उससे पूछा कि खुफिया-विभाग में हो अवश्य, किन्तु मैं क्या-क्या करता हूँ, उसकी भी तुम्हें कोई जानकारी है? कुछ बता सकते हो कि मैं कब-कब, क्या-क्या करता हूँ, और मैं उस समय विस्मित हो उठा, जब उसने कहा कि अन्य लोगों के साथ-साथ वह मेरे विषय में भी सभी जानकारियाँ रखता है। तात्पर्य यह, कि व्यक्ति स्वयं ही अपने कार्य-कलापों को तो भूल जाता है, किन्तु खुफिया-तंत्र के खाते में सभी के कार्य-कलाप विगतवार अंकित होते रहते हैं।

अतः किसी भी व्यक्ति को यह नहीं सोचना चाहिये कि उनके विवादग्रस्त या विवादविहीन कार्यों को

कोई देखने-परखने वाला नहीं। किन्हीं विशिष्ट अवसरों पर उनका पूरा लेखा-जोखा अवश्य ही प्रकट हो जाता है जो पुरस्कृत अथवा दण्डित करने के लिये पर्याप्त होते हैं।

महावीर का सावधानी पूर्वक चलने, उठने, बैठने, रहने कार्य करने या सोचने सम्बन्धी उपदेश आज के सन्दर्भों में कितने व्यावहारिक, उपयोगी एवं शाश्वत कोटि के हैं, इसका रहस्य अब स्पष्ट ही मेरी समझ में आता है।

राष्ट्रपति सहस्राब्दी पुरस्कार राष्ट्रपति जी की अस्वस्थता के कारण मुझे एक वर्ष बाद मिला। यह समारोह इन्वेस्टीट्यूर सेरेमोनी (Investiture Ceremony) कहलाती है। यह आयोजन 6 फरवरी 2002 को सम्पन्न किया गया। पुरस्कृत विद्वानों को उनकी अपनी-अपनी धर्मपत्नियों के साथ भारत सरकार हवाई उड़ान से आने-जाने का अनुरोध करती है तथा उन्हें "श्री स्टार होटल" में 4 दिनों तक अपने सम्मान्य राजकीय अतिथि के रूप में निःशुल्करूप से रहने की पूर्ण व्यवस्था करती है। पुरस्कार-सम्मान भी पूर्ण राजकीय शान-शौकत के साथ प्रदान किया जाता है। पुरस्कृतों को सभागार में अग्रश्रेणी में तथा दर्शकों की दीर्घा उसके बगल में तथा सम्मुख होती है। राष्ट्रपति के सभागार में आने के पूर्व पुरस्कृतों को रिहर्सल की प्रक्रियाओं से गुजरना पड़ता है। उसमें उन्हें राष्ट्रपति जी के सम्मुख कहाँ-कहाँ से, कैसे-कैसे अनुशासन पूर्वक जाना चाहिये, कैसे पुरस्कार ग्रहण करना चाहिये तथा पुरस्कार ग्रहण कर कहाँ-कहाँ कैसे-कैसे लौटकर अपना सुनिश्चित स्थान ग्रहण करना चाहिये, यही बताया जाता है।

उक्त प्रक्रियाओं से गुजरते समय मुझे मूलाचार की उस गाथा का स्मरण हो आया, जिसमें बताया गया है कि श्रावक एवं साधु को किस प्रकार चलना, फिरना, उठना अथवा बैठना चाहिये- कंधं चरे कंधं चिट्ठे आदि आदि।

रिहर्सल के समय राजकीय उद्घोषिका पुरस्कृत विद्वानों का पूर्ण परिचय प्रस्तुत करती है। तत्पश्चात् विशिष्ट पोशाक में लम्बे-लम्बे कद वाले 20-25 हट्टे-कट्टे नौजवान अंगरक्षक आते हैं, जो राष्ट्रपति जी के मंच को चारों ओर से घेर कर अपना-अपना स्थान ग्रहण करते हैं। तत्पश्चात् बिगुल बजने के साथ ही सुनिश्चित समय पर राष्ट्रपति जी मंच को पर पधारते हैं और राष्ट्रीय गान के बाद कार्यक्रम प्रारम्भ हो जाता है। आयोजन के बाद पुरस्कृतों को राष्ट्रपति जी की ओर से भोज दिया जाता है। वे सभी सौहार्दपूर्वक मिलते, हाथ मिलाते और वार्तालाप करते हैं। उनके बच्चों के साथ भी झुककर प्यार से हाथ मिलाते एवं मनोरंजक वार्तालाप करते हैं। अगले दिन पुरस्कृतों को भारत-सरकार की ओर से दिल्ली के विशिष्ट स्थलों का भ्रमण कराया जाता है और स्नेहिल वातावरण में सभी को विदाई दी

जाती है।

राष्ट्रपति सहस्राब्दी पुरस्कार के उपलक्ष्य में मुझे अपने स्नेही मित्रों, गुरुजनों, शिष्यों, श्रीमन्तों, धीमन्तों एवं नेताओं के इतने अधिक बधाई सम्बन्धी टेलीफोन, तार एवं पत्र मिले कि मैंने उतने की आशा न की थी। कुछ संस्थानों ने मेरे इस सम्मान के उपलक्ष्य में आयोजन भी किये। जैन सिद्धान्त भवन, आरा के कुलपति श्री बाबू सुबोधकुमार जी जैन ने विशिष्ट आयोजन कर नगर के प्राध्यापकों एवं समाज के नर-नारियों के मध्य "सिद्धान्ताचार्य" की उपाधि प्रदान कर मुझे स्वर्णसूत्र ग्रथित विशिष्ट शाल उड़ाकर अपना हर्ष व्यक्त किया। कुन्दकुन्द भारती, नई दिल्ली ने इस सम्मान को स्वयं अपना तथा प्राकृत एवं जैन विद्या का सम्मान माना। प्राकृत-जगत् ने इसे दुर्लभ प्राकृत-अपभ्रंश पाण्डुलिपियों का सम्मान माना। सम्मान प्राप्ति हेतु मेरे तथा मेरी धर्मपत्नी के दिल्ली पहुँचने पर श्री कुन्दकुन्द भारती ने हवाई अड्डे पर अपने प्रतिनिधियों - डॉ. वीरसागर जैन आदि को भेजकर वहीं हमारे स्वागत की विशेष व्यवस्था की। मेरे अनेक मित्रों ने इसे जैन समाज का सम्मान माना और मैंने स्वयं इसे अपनी जन्मभूमि मालधौन (सागर) तथा कर्मभूमि आरा (बिहार) दिल्ली तथा जैन सन्देश (मथुरा) का सम्मान माना।

यह मेरा महान् सौभाग्य है कि राष्ट्रसन्त परमपूज्य आचार्य जी विद्यानन्द जी ने मेरे सिर एवं पीठ पर पिच्छी का स्पर्श कराकर मुझे आगे की विवादग्रस्त झंझटों से दूर रहकर प्राकृत एवं जैन विद्या तथा दुर्लभ अप्रकाशित जैन पाण्डुलिपियों पर एकाग्र मन से पूर्ववत् ही शोध-सम्पादन कार्य करते रहने का शुभाशीर्वाद दिया और डॉ. ए. एन. उपाध्ये तथा डॉ. हीरालाल जी के मार्ग पर चलते रहने का मंगल-आशीर्वाद दिया।

पुरस्कार ग्रहण करते समय मैं अपनी उन शिक्षा संस्थाओं-पौरा (टीकमगढ़) गुरुकुल, स्याद्वाद महाविद्यालय बनारस तथा काशी हिन्दू विश्व विद्यालय तथा वहाँ के अपने गुरुजनों का भी स्मरण करता रहा, जिनके द्वारा प्रदत्त संस्कारों से मैं कुछ बन सका। मुझे अपने बचपन के वे दिन याद आते रहे, जब मेरी माता जी प्रातः काल में ही मुझे नहलाकर तथा स्वयं राजस्थानी पोशाक धारण कर मुझे जिन-मन्दिर ले जाती थीं और देवदर्शनकर किसी हस्तलिखित पोथी का मनोयोग पूर्वक स्वाध्याय करती थीं और मैं कभी उनकी श्रद्धाभरित एकाग्र मुखमुद्रा देखता रहता और कभी हस्तलिखित ग्रन्थ का वह पत्र, जिसका कि वे स्वाध्याय किया करती थी। उनके द्वारा प्रदत्त वही प्रच्छन्न-संस्कार मुखर हुआ सन् 1956 में, जब डॉ. उपाध्ये जी एवं डॉ. हीरालाल जी के आदेश से मैंने महाकवि रङ्गू, विबुध श्रीधर, महाकवि सिंह तथा महाकवि पद्म आदि की हस्तलिखित प्राचीन पाण्डुलिपियों की खोज एवं अध्ययन एवं सम्पादन का दृढ़व्रत लिया। यह कार्य मुझे ऐसा रुचिकर लगा कि प्रतिदिन कॉलेज सर्विस के साथ-साथ प्रतिदिन 14-14, 15-15 घण्टे कार्य करके



भी थकावट का अनुभव नहीं करता था। वर्तमान में भी मेरा ऐसा ही अनथक अभ्यास चल रहा है।

उच्चकोटि के पुरस्कारों का अपना भौतिक महत्त्व तो है ही, किन्तु उसका मनोवैज्ञानिक महत्त्व उससे भी अधिक है। वह स्वस्थ दीर्घायुष्यकारी होता है, क्योंकि उससे बुद्धजीवियों को विनम्रता के साथ-साथ नई उर्जा-शक्ति मिलती है, नया उत्साह एवं विविध प्रेरणाएँ मिलती हैं, विशेष उत्तरदायित्वों के निर्वाह की भावना भी प्रबल होती है और यह भी अनुभव होने लगता है कि वृद्धावस्था की गणना उल्टी अर्थात् युवावस्था की ओर चलने लगी है और वह बिना थकावट के प्रतिदिन 14-15 घण्टे निर्द्वन्द्व भाव से सार्थक एवं रचनात्मक कार्य करने की स्थिति में

आने लगा है।

मैंने तो व्यक्तिगत रूप से यही अनुभव किया है और मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी यही कार्य-क्षमता अगले कई वर्षों तक बनी रहेगी। मेरी सद्भावना है कि प्राकृत एवं जैन-विद्या की सेवा के क्षेत्र में जो भी एकान्त-मन से कार्यरत हैं, वे यदि निर्विवाद रहकर मौलिक अवदान देते रहेंगे, तो वे भी राष्ट्रपति के सर्वोच्च पुरस्कार-सम्मान को प्राप्त करने के अधिकारी बन सकेंगे, इसमें सन्देह नहीं।

महाजन टोली नं. 2,  
आरा (बिहार)- 802301

## अहिंसा' शीर्षक श्रेष्ठ पुस्तक पर 51000 रुपयों के पुरस्कार की घोषणा

श्री दिगम्बर जैन साहित्य संस्कृति संरक्षण समिति ने भगवान महावीर के 2600वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष के उपलक्ष्य में भगवान महावीर के मूल सिद्धान्त 'अहिंसा शीर्षक' श्रेष्ठ पुस्तक पर 51000 (इक्यावन हजार रुपये) पुरस्कार स्वरूप प्रदान करने का निर्णय लिया है।

पुरस्कार प्राप्तकर्ता को प्रशस्ति-पत्र एवं स्मृति-चिन्ह भी प्रदान किये जाएँगे। पुरस्कार के उद्देश्य एवं नियमावली इस प्रकार हैं :-

- ◆ इस पुस्तक को लिखवाने का मुख्य उद्देश्य है कि एक ही पुस्तक द्वारा भगवान महावीर के मूल सिद्धान्तों का मर्म अभिव्यक्त हो।
- ◆ पुस्तक की भाषा सरल एवं सरस होनी चाहिए तथा शैली सुबोध हो ताकि सामान्य जिज्ञासु (जैन एवं जैनेतर) भी उसका आशय समझ सकें।
- ◆ इस पुस्तक के किसी विशेष जैन सम्प्रदाय का प्रस्तुतीकरण नहीं होना चाहिए।
- ◆ प्रस्तुत की जाने वाली पुस्तक में भगवान महावीर के सार्वभौमिक सिद्धान्तों का आधुनिक ढंग से प्रतिपादन तथा वर्तमान युग की समस्याओं के समाधान में उसकी उपयोगिता आदि का प्रतिपादन अवश्य किया जाना चाहिए।
- ◆ सामान्यतया पुस्तक की अनुमानित पृष्ठ संख्या 200 से अधिक नहीं होनी चाहिए।
- ◆ पुस्तक लेखक की मौलिक तथा अप्रकाशित कृति होनी चाहिए। लेखक को पुस्तक की मौलिकता का प्रमाण-पत्र भी भेजना होगा।
- ◆ पुस्तक का चयन समिति द्वारा स्थापित विद्वानों की एक विशेष समिति द्वारा किया जायेगा। पुरस्कार हेतु

कृति की गुणवत्ता के बारे में समिति का निर्णय अंतिम होगा तथा लेखकों को मान्य होगा। यदि चयन समिति द्वारा कोई भी कृति पुरस्कार योग्य नहीं पायी गयी, तो ऐसी दशा में पुरस्कार निरस्त भी किया जा सकता है।

- ◆ समिति को पुस्तक के प्रकाशन, वितरण तथा अन्य भाषाओं में अनुवाद-प्रकाशन का भी सम्पूर्ण अधिकार रहेगा तथा लेखक को कोई रॉयल्टी नहीं दी जाएगी। समिति को पुस्तक में संशोधन एवं परिवर्द्धन का भी पूर्ण अधिकार रहेगा।
- ◆ पुरस्कार वितरण आचार्य विद्यासागर जी महाराज के पावन सान्निध्य में वर्ष 2003 में एक भव्य समारोह में होगा, जिस में लेखक को आमंत्रित करके ससम्मान पुरस्कृत किया जायेगा।
- ◆ यदि कोई भी अन्य पुस्तक श्रेष्ठ समझी गई तो समिति उसके प्रकाशन की व्यवस्था तो करेगी ही उस पर ग्यारह हजार के दो पुरस्कार भी प्रदान कर सकती है।
- ◆ चयन समिति द्वारा विचारार्थ पुस्तक की पाण्डुलिपि की छह प्रतियाँ पृष्ठ (ए-4 आकार) के एक तरफ टाइप करवाकर जमा करानी होगी। सम्पूर्ण पुस्तक समिति को 30.10.2002 तक प्राप्त हो जानी चाहिए क्योंकि समिति भगवान महावीर जयन्ती 2003 के अवसर पर पुरस्कार विजेता के नाम की घोषणा करना चाहेगी। पुरस्कार हेतु बहुत अधिक संख्या में पुस्तकें प्राप्त होने जैसे या अन्य विशेष कारणों से पुरस्कार करने की तिथि में परिवर्तन भी किया जा सकता है।

प्रवीण कुमार जैन  
श्री दिगम्बर जैन साहित्य संस्कृति संरक्षण समिति  
डी-302, विवेक बिहार,  
दिल्ली - 110095

# पशु रक्षा

संकलन : श्रीमती सुशीला पाटनी

अत्याचार का अन्त करो, बचाओ पर्यावरण “नहीं तो अकाल मरण” “बचाओ पशुधन नहीं तो मिट जायेगा वतन”

ठहर गये श्री विद्यासागरजी नर्मदा के तीर, स्वयं नर्मदा बोल उठी ये इस युग के महावीर दूध की नदियाँ लोप हो गई धरा खून से लाल, कृष्ण कन्हैया की गैया भी, हो गई आज हलाल. क्या कल बूचड़ खानों में, इंसान को काटा जायेगा, पशु मांस खाने वाला क्या, इंसानों को खायेगा?

कत्लखानों में जो पशु काटे जा रहे, उनकी बेहद संख्या है। इसी रफ्तार से पशु कटते रहे तो, एक दिन देश में पशुधन समाप्त हो जायेगा। हम गाय, बैल, भैंस, आदि जानवरों के चित्र मात्र कलेण्डर में देखेंगे और उनके नाम शब्द कोशों में पढ़ेंगे। स्थिति बहुत भयानक है। जिस देश में कृष्णजी की पूजा होती है, उसी देश में कन्हैया की गैया का कत्ल और उसी का माँस निर्यात हो रहा है। आवश्यकता इस बात की है कि हम जनता को इस पशु हत्या का बोध करायें। यदि हमने इस हत्या काण्ड को अनदेखा कर दिया तो आने वाले समय में हमको महासंकट से गुजरना होगा। देश में कोई संकट न आये, इसके पहले ही हम अपनी सुरक्षा कर लें। वस्तुतः यदि इंसान इसी प्रकार मांस का भक्षण करता रहा तो एक दिन सारे पशु समाप्त हो जायेंगे, फिर बारी आयेगी इंसान की। आदमी आदमी को न खाये इसके लिए हमें शाकाहार क्रांति लाना है, जिसमें हम भी सुखी रहें और पशु पक्षी भी सुखी व सुरक्षित रहें।

जिन्हें बचाते महावीर प्रभु, गौतम का देश, उनके मांस का निर्यात कर दिया भारत ने विदेश। सोचो समझो भारत माँ के मुँह पर आज मुस्कान नहीं, पशु मांसनिर्यात करे यह अपना हिन्दुस्तान नहीं।

भारत कृषिप्रधान, अहिंसाप्रधान देश है यहाँ गाय की पूजा होती है। यहाँ से हीरे मोती रत्नों का निर्यात होता था। यहाँ पशु पालन होता था। आदिब्रह्मा ऋषभदेव ने युग के आदि में भारतीय जन मानस को यह नारा दिया था कि “कृषि करो या ऋषि बनो”। भारत ने यह नारा भुला दिया, पशु पालन करने वाला देश आज पशुओं का कत्ल कर रहा है। यह भारत के लिए कलंक है। भारतीयो जागो! माँस निर्यात करना भारत की संस्कृति नहीं है। भारत की गरिमा को बताते हुए एक कवि ने कहा है।

देखो शंकर तेरा नन्दी, कत्लखानों में कट रहा  
इन राजनीति के अन्धों द्वारा, देश मिटाया जा रहा।  
मंगल पाण्डेय के इतिहास को, यूँ दुहराया जाता है,  
और गौ माता का खून, भारत में बहाया जाता है

आप अपनी आजादी के इतिहास को जरा याद करें, भारत की आजादी का इतिहास ही गौ रक्षा से प्रारम्भ हुआ था। कारतूस पर गाय की चर्बी लगाकर अँग्रेजी सरकार ने भारतीयों का धर्म भ्रष्ट करना चाहा।

जो जलचर, थलचर जीव नभचर हैं,  
उनकी रक्षा करना ही हमारा कल्चर है।

सरकार को समझना होगा, अपनी भारतीय संस्कृति और इतिहास का अध्ययन करना होगा।

बहुत सहा हमने अब तक  
अब नहीं सहन करेंगे।

खून की धारा भारत में,  
अब नहीं बहने देंगे।

बन्द करो माँस निर्यात, नहीं तो,  
हिन्दुस्तान में नहीं रहने देंगे।

वस्तुतः यह संकल्प है। हमको अब सचेत हो जाना है हमारा देश वीरों का देश है, रणवीरों का बहादुरों का देश है, शहीदों का देश है। हम मौत से डरने वाले नहीं हैं, हम तो पाप से डरते हैं। क्षत्रिय वही कहलाता है, जो निर्बलों की रक्षा करता है।

पशुओं की रक्षा के खातिर, कुर्बान जवानी कर दोगे,  
इस धरती से बूचड़खानों की, खत्म कहानी कर दोगे।  
अरे मेरे भाई-बहिनो कुछ नई बात कर लो,  
इस हिन्दुस्तान से उन भ्रष्ट नेताओं का निर्यात कर दो।  
भ्रष्ट नेताओं का निर्यात करने में कोई हिंसा भी नहीं है, वे तो पशुओं का कत्ल करके उनका मांस निर्यात कर रहे हैं, हमको उनका जिन्दा निर्यात करना है।

एक कलंक लग रहा है, आदमी की जात को,  
बंद करो बूचड़खाने, मांस के निर्यात को।

क्या हो गया है आज, ये गाँधी के देश को,  
रुपये के बदले माँस बेचता विदेश को।

माँ की मृत्यु के पश्चात् बच्चे का पालन गौ माता के दूध से होता है। दुनिया में दो ही दूध हैं पहला माँ का, दूसरा गोमाता का। आज गाय भी खतरे में और दूध भी। अब कायरता को छोड़ दो और पशुहत्या को रोकने के लिए आगे आओ।

आर. के. मार्बल्स लि.  
मदनगंज-किशनगढ़

मुमकिन नहीं है कोई घड़ी ऐसी बता दे ।  
जो गुजरे हुए वक़्त के घण्टों को बजा दे ।।

# प्रश्न आस्था का

माणिकचन्द्र जैन पाटनी

मान्यता एवं आस्था के विपरीत यदि आधुनिक शोध वैशाली को भगवान महावीर की जन्म स्थली मान रही है, तो यह हमारी संस्कृति पर चोट है और अनुचित है। कुण्डलपुर जन्म स्थली संबंधी प्राचीन मान्यता भी तो किसी शोध, अनुसंधान पर ही आधारित थी। शोध अवश्य की जाये और वह स्वागत योग्य भी है पर यह शोध आस्थाओं पर कुठाराघात करने वाली नहीं होनी चाहिये।

बिहार प्रांत में कुण्डलपुर और वैशाली दोनों अलग-अलग राजाओं के अलग-अलग नगर थे तथा कुण्डलपुर के राजा सिद्धार्थ एवं वैशाली के राजा चेटक का अपना-अपना विशेष अस्तित्व था।

राजा चेटक की महारानी सुभद्रा से दस पुत्र व सात पुत्रियाँ हुईं। इनमें प्रियकारिणी “त्रिशला” का विवाह श्रेष्ठ नाथवंशी कुण्डलपुर नरेश सिद्धार्थ के साथ कर दिया गया। किसी भी कन्या का विवाह हो जाने पर उसका वास्तविक परिचय सुसराल से होता है न कि नाना, मामा के वंश और नगर से। अतएव महावीर की पहचान ननिहाल वैशाली और नाना चेटक से नहीं वरन् पिता की नगरी कुण्डलपुर एवं पिता सिद्धार्थ राजा से मानना शोभास्पद है। अतः महावीर को कुण्डलपुर का युवराज ही स्वीकार करना होगा न कि वैशाली का। दिगम्बर जैन धर्म के अति प्राचीन प्रमाण मौजूद हैं जिनमें महावीर का जन्म स्थल कुण्डलपुर ही माना गया है।

भगवान महावीर के ननिहाल में यदि कोई अवशेष मिले हैं, तो वे जन्मभूमि के प्रतीक न होकर ये पौराणिक तथ्य दर्शाते हैं कि तीर्थंकर महावीर के अस्तित्व को वैशाली में भी उस समय मानकर उनके नाना, मामा सभी गौरव का अनुभव करते हुए सिक्के आदि में उनके चित्र उत्कीर्ण कराते थे तभी वे आज पुरातत्त्व के रूप में प्राप्त हो रहे हैं।

दिगम्बर परम्परानुसार तीर्थंकर तो अपनी माता-पिता के इकलौते पुत्र ही होते हैं अर्थात् उनके कोई भाई नहीं होता। अतएव माता-पिता के स्वर्गवासी होने के पश्चात् कुण्डलपुर की महिमा वैशाली में मामा आदि जाति बन्धुओं ने प्रचारित कर वहाँ कोई महावीर का स्मारक बनवाया हो, तो अतिशयोक्ति नहीं है। संभव है कि उस स्मारक के अवशेष वहाँ मिल रहे हों। बन्धुओ ! इस तरह निराधार एवं नये इतिहासकारों के अनुसार प्राचीन

तीर्थों का शोध चलता रहा, तो वह दिन दूर नहीं जब हमारे हाथ से कई महत्वपूर्ण तीर्थ कुण्डलपुर, पावापुरी, आदि भी निकल जायें।

शोध का उद्देश्य तो यह होना चाहिये कि वह अपने मूल इतिहास एवं सिद्धान्तों को सुरक्षित रखते हुए वर्तमान को प्राचीनता से परिचित कराये। वैशाली में न तो महावीर स्वामी का कोई प्राचीन मंदिर है और न ही उनके महल आदि की कोई प्राचीन इमारत है जबकि पटना जिले में स्थित कुण्डलपुर में भगवान महावीर के गर्भ, जन्म, तप, कल्याणक हुए थे, इस प्रकार की मान्यता कई शताब्दियों से चली आ रही है वहाँ भगवान का शिखरबंद मंदिर है और वार्षिक मेला भी चैत्र सुदी १२ से १४ तक जन्मकल्याणक मनाने के लिए होता है। सम्मेशिखर जी की यात्रा पर जानेवाले सभी यात्री कुण्डलपुर जाना अपना परमधर्म समझते हैं। सभी जैन धर्मावलम्बी प्रतिदिन प्रातः भगवान महावीर के पूजन में “कुण्डलपुर में जन्म लियो” व सायंकाल आरती में “कुण्डलपुर अवतारी” का नाम उल्लेख करते हुए इस तीर्थ के प्रति अपनी आस्था प्रकट करते हैं।

दिगम्बरपरम्परा के ग्रन्थों को छोड़कर अन्य प्रमाणों के आधार पर प्रमाणिकता भले ही बदल जाय, पर दिगम्बर जैन धर्मानुरागी बंधुओं की आस्था व मान्यता तो अपरिवर्तनीय ही रहेगी और वे कुण्डलपुर को ही भगवान महावीर की जन्म स्थली मानते हुए वहाँ जाकर अपना माथा टेकते रहेंगे। दिगम्बर धर्म के नेतृत्व एवं उपासकों का यह परम कर्तव्य है कि वे आगम ग्रंथों में उल्लिखित, जन-जन की आस्था के केन्द्र कुण्डलपुर (नालंदा) के विकास एवं संरक्षण का दायित्व ग्रहण करें।

राष्ट्रीय महामंत्री दिगम्बर जैन महासमिति  
१६-अ, नेमीनगर, इन्दौर -४५२००९

पोथी पढ़ि पढ़ि जग मुआ, पंडित भया न कोय।  
ढाई आखर प्रेम का, पढ़े सो पंडित होय ॥

निंदक नियरे राखिये, आँगन कुटी छबाय।  
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करत सुभाय ॥

# जिज्ञासा-समाधान

पं. रतनलाल बैनाड़ा

**जिज्ञासा** - दिगम्बर मुनि को विहार में गमन करते हुए यदि सूर्य अस्त हो जाये तो क्या उनको विहार बन्द कर वहीं रुक जाना चाहिए?

**समाधान** - दिगम्बर जैन शास्त्रों के अनुसार दिगम्बर मुनि का गमन ईर्यासमिति पूर्वक ही होता है। सूर्यास्त होने पर ईर्यासमिति का पालन नहीं हो सकने के कारण, जहाँ भी सूर्य अस्त होता है, मुनिराज वहीं रुक जाते हैं। प्रातः सूर्य उदय होने पर ही वे आगे विहार करते हैं। आचार्य जटासिंह नन्दी ने वरांगचरित्र में इस प्रकार कहा है -

“यस्मिन्स्तु देशोऽस्तमुपैति सूर्यस्तत्रैव संवासमुखा बभूवुः।  
यत्रोदयं प्राप सहस्ररश्मिर्यातास्तोऽथापुरविऽप्रसंगाः ॥”

30/47 अर्थ - चलते-चलते जिस स्थान पर सूर्य अस्त हो जाता था, वहीं पर वे रात्रि को रुक जाते थे और ज्यों ही सूर्य का उदय होता था त्यों ही वे उस स्थान से प्रस्थान कर जाते थे। श्री मूलाचार गाथा 786 में भी इस प्रकार कहा है -

ते णिम्ममा सरीरे जत्थत्थमिदा वसंति अणिएदा !  
सवणा अप्पडिबद्धा बिज्जू जह दिट्ठणट्ठा ॥786

अर्थ - वे शरीर से निर्मम हुए मुनि आवास रहित हैं। जहाँ पर सूर्यास्त हुआ वहीं ठहर जाते हैं, किसी से प्रतिबद्ध नहीं हैं, वे श्रमण बिजली के समान दिखते हैं और चले जाते हैं।

**जिज्ञासा** - मनुष्य गति में आठ वर्ष की अवस्था में कम उम्र वालों को सम्यक्त्व उत्पन्न नहीं होता, ऐसा सुनते हैं। क्या इसका कोई आगम प्रमाण है?

**समाधान** - श्री अकलंक स्वामी ने राजवर्तिक में इस प्रकार कहा है-“मनुष्या उत्पादयन्तः पर्याप्तका उत्पादयन्ति नापर्याप्तकाः। पर्याप्तकाचाऽष्टवर्षस्थितेरुपर्युत्पादयन्ति नाधस्तात्”

अर्थ - मनुष्यों में पर्याप्तक मनुष्यों के ही सम्यक्त्व की उत्पत्ति होती है, अपर्याप्तकों के नहीं। पर्याप्तकों में भी आठ वर्ष की आयु से अधिक के ही उत्पत्ति होती है, आठ वर्ष आयु से कम वालों के नहीं।

**जिज्ञासा** - क्या देव भी सल्लेखना करते हैं या नहीं?

**समाधान** - शरीर और कषायों को भली प्रकार कृश करना सल्लेखना है। जैसा सर्वार्थसिद्धि 7/22 में कहा है-‘सम्यक् कायकषायलेखना सल्लेखना’। देवों में कषायों का कृश करना तो मरण समय सम्भव है, परन्तु शरीर कृश करने का प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि उनका आहार, उनके स्वयं के आधीन नहीं है।

जहाँ तक कषाय को कृश करते हुए अंतिम समय शरीर छोड़ने का प्रश्न है, श्री सिद्धांतसार दीपक अधिकार- 15, श्लोक नं. 396 से 400 में इस प्रकार

कहा है -‘इस प्रकार मनुष्य भव प्राप्त कर मोक्ष का साधन करने के विचार सहित उत्तम देव नाना प्रकार से अरहंत देव की पूजा करके मरण के अन्तिम समय में अपने चित्त को अत्यन्त निश्चल करते हुए अपने दोनों हाथ जोड़कर पंच-परमेष्ठियों का ध्यान करते हैं तथा इस लोक, परलोक में आत्मसिद्धि देने वाला नमस्कार करते हैं। मरण बेला में किसी पुण्य रूप उत्तर क्षेत्र में जाकर बैठ जाते हैं, वहाँ आयु क्षय होते ही उन देवों का शरीर मेघों के सदृश शीघ्र ही विलीन हो जाता है।’

श्री आदिपुराण भाग-1, पृष्ठ 121, श्लोक नं. 24-25 में इस प्रकार कहा है - ‘तत्पश्चात् वह ऐशान स्वर्ग का ललितांग देव अच्युत स्वर्ग की जिन प्रतिमाओं की पूजा करता हुआ आयु के अंत में वहीं सावधान चित्त होकर चैत्य वृक्ष के नीचे बैठ गया तथा वहीं निर्भय हो, हाथ जोड़कर उच्च स्वर से नमस्कार मंत्र का ठीक-ठीक उच्चारण करता हुआ अदृश्यता को प्राप्त हो गया।

श्री आदिपुराण भाग-1, पृष्ठ 124, श्लोक 56-57 में इस प्रकार कहा है- ‘तदनन्तर वह स्वयंप्रभा नामक देवी सौमनस वन सम्बन्धी पूर्व दिशा के जिन मंदिर में चैत्यवृक्ष के नीचे पंचपरमेष्ठियों का भली प्रकार स्मरण करते हुए समाधिपूर्वक प्राण त्यागकर स्वर्ग से च्युत हो गई।’ (इस श्लोक में स्वयं आचार्य ने उस देवी के मरण को समाधिपूर्वक लिखा है)

**जिज्ञासा** - क्या मानुषोत्तर पर्वत पर मनुष्य चढ़ सकते हैं? क्या उस पर स्थित चैत्यालयों की वंदना मनुष्य कर सकता है?

**समाधान** - श्री त्रिलोकसार गाथा 937 में इस प्रकार कहा है-

अंते टंकच्छिण्णो वाहिं कमवड्ढिहाणि कणयणिहो।  
णदिणिगगमपहचोइसगुहाजुदो माणुसुत्तरगो ॥937

अर्थ- पुष्कर द्वीप के मध्य में मानुषोत्तर पर्वत है। वह अभ्यन्तर में टड्कछिन्न और बाह्य भाग में क्रमिक वृद्धि एवं हानि को लिए हुए है। स्वर्ण सदृश वर्णवाला एवं नदी निकलने के चौदह गुफाद्वारों से युक्त है। अर्थात् मानुषोत्तर पर्वत मनुष्य लोक की तरफ, नीचे से ऊपर तक एक जैसा अर्थात् दीवार की तरह है। इससे यह स्पष्ट होता है कि इस पर किसी भी मनुष्य का चढ़ना सम्भव नहीं है। लेकिन मानुषोत्तर पर्वत की चारों दिशाओं में स्थित जिनालयों को आचार्यों ने मनुष्य लोक के अकृत्रिम जिनालयों में माना है, जैसा कि श्री त्रिलोकसागर गाथा 561 में कहा है-

णमह णरलोयजिणघर चत्तारि सयाणि दोविहीणाणि।  
वावण्णं चउ चउरो णंदीसर कुंडले रुचगे ॥561

**गाथार्थ - मनुष्यलोकसम्बन्धी दो कम चार सौ(398)**  
जिन मंदिरों को तथा तिर्यलोक सम्बन्धी नन्दीश्वर द्वीप, कुण्डलगिरि और रुचकगिरि में क्रम से स्थित बावन, चार और चार जिन मंदिरों को नमस्कार करो। (अर्थात् मानुषोत्तर पर्वत के चार जिनालयों को नरलोक के जिनालय माना है) जबकि श्री सिद्धान्तसार दीपक अधिकार 10 श्लोक नं. 281-282 में इस प्रकार कहा है-

**कैवल्यख्यसमुद्घाताच्चोपपादाद्विनाडिगनाम् ।  
अद्रिमुल्लंघ्यशक्तता नेमं गन्तुं तत्परां भुवम् ॥ 281  
विद्येशाशचारणा वान्ये प्राप्ताऽनेकद्वयःक्वचित् ।  
ततोऽयं पर्वतो मर्त्यलोकसीमाकरो भवेत् ॥ 282**

**अर्थ:-** केवलीसमुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात और उपपादजन्म वाले देवों के सिवाय अन्य कोई भी प्राणी इस मानुषोत्तर पर्वतसे युक्त पृथ्वी को उल्लंघन करके नहीं जा सकता। विद्याधर, चारणऋद्धिधारी तथा अनेक प्रकार की और भी अनेक ऋद्धियों से युक्त जीव भी इस पर्वत को उल्लंघन नहीं कर सकते, इसीलिये यह पर्वत मनुष्यलोक की सीमा का निर्धारण करने वाला है।

उपर्युक्त प्रमाण से स्पष्ट होता है कि मानुषोत्तर पर्वत पर स्थित जिनालयों की वंदना विद्याधर या ऋद्धिधारी मुनिराज भी नहीं कर सकते। अब मेरा प्रश्न है कि जब इन चैत्यालयों की वंदना मनुष्य कर ही नहीं सकता तब इनको मनुष्यलोक के अकृत्रिम जिनालयों में क्यों गिना गया है? आशा है विद्वज्जन मेरे प्रश्न का उत्तर मुझे लिखने का कष्ट करेंगे।

**जिज्ञासा:-** क्या द्रव्यानुयोग से ही सम्यक्त्व की प्राप्ति हो सकती है या अन्य अनुयोगों के अध्ययन से भी सम्यक्त्व प्राप्ति सम्भव है?

**समाधान:-** सत्य तो यह है कि चारों ही अनुयोगों के ज्ञान से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है। श्री दर्शनपाहुड गाथा 12 की टीका में इस प्रकार कहा है-

1. रत्नत्रय एवं आत्मध्यान को प्रदान करने वाले त्रेसठशालाका पुरुष सम्बन्धी महापुराण के सुनने से (प्रथमानुयोग के उपदेश से) जो श्रद्धान उत्पन्न होता है, वह उपदेश सम्यग्दर्शन कहा जाता है।

2. मुनियों के आचार का निरूपण करने वाले मूलाचार आदि शास्त्रों को (चरणानुयोग के शास्त्रों को) सुनकर जो श्रद्धान उत्पन्न होता है वह सूत्रसम्यक्त्व कहा जाता है।

3. काललब्धिवश मिथ्या अभिप्राय के नष्ट होने पर, दर्शनमोह के असाधारण उपशमरूप आभ्यंतर कारण से कठिनाई से व्याख्यान करने योग्य जीवादि पदार्थों के बीजभूत (करणानुयोग) शास्त्र सुनने से जो सम्यक्त्व उत्पन्न होता है वह बीज सम्यक्त्व कहलाता है।

4. तत्त्वार्थसूत्र आदि सिद्धांतग्रन्थों में निरूपित जीवादि द्रव्यों के प्ररूपक (द्रव्यानुयोग के शास्त्र) अनुयोग के द्वारा संक्षेप से पदार्थों को जानकर, जो रुचि होती है, वह संक्षेपसम्यक्त्व

कहा जाता है।

ऐसा ही वर्णन आत्मानुशासन में भी किया है। मोक्षमार्ग प्रकाशक (जयपुर प्रकाशन) अधिकार 9 पृष्ठ 332 पर भी उपर्युक्त प्रकार से ही चारों अनुयोगों के उपदेश से सम्यक्त्व होना वर्णित है। अतः केवल द्रव्यानुयोग के स्वाध्याय से ही सम्यक्त्व होता है, ऐसी मान्यता उचित नहीं है। जयपुर से प्रकाशित मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ 200 पर इस प्रकार कहा है -“यदि तेरे सच्ची दृष्टि हुई है तो सभी जैन शास्त्र कार्यकारी हैं। इसलिए चारों ही अनुयोग कार्यकारी हैं।”

सम्यग्ज्ञान चंद्रिका (जयपुर प्रकाशन पृष्ठ 9) पीठिका में पं. टोडरमल जी ने द्रव्यानुयोग के स्वाध्याय में पक्षपाती को इस प्रकार समझाया है- “बहुरि तैं कया कि अध्यात्म शास्त्रिनि का ही अभ्यास करना सो युक्त ही है। परन्तु तहाँ भेद-विज्ञान करने के अर्थि स्व-पर का सामान्यपने स्वरूप निरूपण है। अर विशेषज्ञान बिना सामान्य स्पष्ट होता नाहीं तातैं जीव के और कर्म के विशेष नीकें जाने ही, स्व-पर का जानना इष्ट हो है तिस विशेष जानने को इस शास्त्र का (गोम्मतसार जीवकाण्ड का जो करणानुयोग का ग्रन्थ है) अभ्यास करना। जातैं सामान्य शास्त्रतैं विशेष शास्त्र बलवान हैं।”

उपर्युक्त सभी प्रमाणों के अनुसार चारों ही अनुयोग सम्यक्त्व की प्राप्ति एवं आत्मकल्याण में कार्यकारी हैं। अतः मात्र द्रव्यानुयोग में रुचि रखना व अन्य अनुयोगों में अरुचि होना सही मार्ग नहीं है।

**जिज्ञासा:-** पूजा एवं अभिषेक के वस्त्रों को आहारदान देने या भोजन करने में प्रयोग करना चाहिए या नहीं ?

**समाधान:-** आज से बहुत वर्षों पूर्व तक यही परम्परा देखने में आती थी कि पूजा व अभिषेक के वस्त्रों से न तो पात्रों को आहार दिया जाता था और न ही स्वयं भोजन ही करते थे। परन्तु वर्तमान में यह परम्परा लगभग समाप्त हो गई है। अधिकांश दातागण मंदिर के धोती-दुपट्टों को पहनकर आहारदान देते हुए और स्वयं करते हुए दिखाई पड़ने लगे हैं। कवि किशनचंद रचित क्रियाकोष दोहा नं. 1453 में इस प्रकार कहा है-

**वसन पहिर भोजन करै, सो जिनपूजा माहिं।**

**तनु धारे अघ रूपजै, या में संशय नाहिं।।**

**अर्थ:-** जिन वस्त्रों को पहनकर भोजन किया है, यदि उन वस्त्रों को जिन पूजा में शरीर पर धारण करता है तो पाप होता है। इसमें संशय नहीं है।

अतः उपर्युक्त श्लोकार्थ को ध्यान में रखते हुए पूजा व अभिषेक के वस्त्रों से कोई अन्य कार्य नहीं करना चाहिए। जो वस्त्र जल गया हो, फट गया हो, दूसरों का पहना हुआ हो, दीर्घशंका, लघुशंका आदि में प्रयोग हुआ हो वह संधित वस्त्र कहलाता है, ऐसे वस्त्र से भी जिनपूजा कभी नहीं करनी चाहिए।

1/205, प्रोफेसर्स कालोनी  
आगरा- 282002 (उ.प्र.)

# पड़ौसी पुराण

शिखरचन्द्र जैन

पड़ौसी से प्रेम करने की सीख जो महात्माओं ने दी है, वह मूलतः इस कारण कि इस संसार में बहुतेरे लोग पड़ौसी से प्रेम करना पसंद नहीं करते। वैसे तो महापुरुष लोग, आदमी से जो करने को कहते हैं, वह बहुधा असंभव की हद तक मुश्किल हुआ करता है। इसलिए आम आदमी अमल में नहीं ला पाता। जैसे कि आचार्यों का कहना है कि मनुष्य को हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील और परिग्रह का सर्वथा परित्याग करना चाहिए, क्योंकि ये पाँचों पाप कहलाते हैं और पाप करने पर देर-सबेर दंड का भागी अवश्य ही बनना पड़ता है। अब आदमी से अगर यह सचमुच अपेक्षित है कि वह दण्ड के भय से पाप न करे, तो उस पाप का दण्ड तत्काल दिए जाने का प्रावधान होना चाहिए। बहुत कुछ उसी तरह, जिस तरह कि आग को छूते ही हाथ जल जाता है। यह नहीं कि लौकिक न्याय व्यवस्था की माफिक पाप का दण्ड भुगतने का अवसर दशाब्दियों-शताब्दियों के बाद आए। तब तक तो अगले के मर-खप जाने का समय हो जाता है। जबकि पुरानी स्मृतियाँ नए जन्म में "कैरी-फावर्ड" होती नहीं। ऐसे में प्राणी को यदि पाप और दण्ड का सीधा संबंध बैठते नजर नहीं आता, तो उसे पूर्णरूपेण दोषी नहीं माना जाना चाहिए। इस संदर्भ में, तीनों लोकों के समस्त जीवों की ओर से मैं सक्षम प्राधिकरण से विनम्रता पूर्वक निवेदन करना चाहूँगा कि प्राणी मात्र के कल्याण हेतु या तो पाप का दण्ड स्मृति के रहते तक निपटा दिए जाने की व्यवस्था की जानी चाहिए, या फिर जन्म-जन्मांतर तक पुरानी स्मृतियों के सदैव ताजा बने रहने का प्रावधान किया जाना चाहिए। तभी लोग आचार्यों के कथन को समुचित महत्त्व दे पायेंगे।

बहरहाल, बात मैं पड़ौसी की कर रहा था। मेरी समझ से जिस रोज एक स्वतंत्र घुमंतु व्यक्ति ने घर बनाकर समूह में रहने का फैसला लिया, उसी रोज उसने पड़ौसी नामक मुसीबत मोल ले ली। उसी दिन मनुष्य के मन में ईर्ष्या की भावना का आविर्भाव हुआ। तभी से "उसकी कमीज, मेरी कमीज से ज्यादा सफेद कैसे?" जैसी तुलनात्मक प्रवृत्ति का जन्म हुआ। उसी पल से पड़ौसी से दो अंगुल ऊँचा दिखाई देने की कोशिश में उसने साम-दाम-दंड-भेद का सहारा लेना प्रारंभ किया। तब से अब तक आदमी को अपने समकक्ष अथवा अपने

पड़ौसी से प्रेम करने की सीख जो महात्माओं ने दी है, वह मूलतः इस कारण कि इस संसार में बहुतेरे लोग पड़ौसी से प्रेम करना पसन्द नहीं करते। वैसे भी महापुरुष लोग, आदमी से जो करने को कहते हैं, वह बहुधा असंभव की हद तक मुश्किल होता है। इसलिए आम आदमी अमल में नहीं ला पाता।

से ज्यादा विकसित, समर्थ या गुणी पड़ौसी फूटी आँखों नहीं सुहाया। भविष्य में भी इस स्थिति में किसी विशेष परिवर्तन की संभावना दृष्टिगोचर नहीं होती। इंग्लैण्ड और अमेरिका भले कितनी ही कोशिशें कर लें!

यों तो पड़ौसियों के बीच

प्रतिस्पर्धा का प्रचलन प्राचीन काल से ही रहा है, पर इधर औद्योगीकरण के फलस्वरूप ज्यादा नजदीक रहने लगे लोगों में एक-दूसरे के घर में तॉक-झॉक करने की प्रवृत्ति में अभूतपूर्व अभिवृद्धि हुई है। अब पड़ौसी द्वारा उठाए गए प्रत्येक कदम का प्रभाव पड़ौसी की चाल पर तत्काल देखा जा सकता है। न्यूटन का नियम कि "प्रत्येक क्रिया की समतुल्य लेकिन विपरीत प्रतिक्रिया अवश्य ही होती है" का परिपालन पड़ौसियों के परस्पर व्यवहार में भली-भाँति परिलक्षित होता है। जब नए खरीदे रेफ्रीजरेटर में बनाई गई आइसक्रीम का सेवन करते हुए अगले की छाती जुड़ा रही होती है, तब पड़ौसी के पूरे शरीर में आग सुलगने लगती है। जब पड़ौसी का बेटा कक्षा में प्रथम आने पर पुरस्कार ग्रहण कर रहा होता है, तब अगला अपने पुत्र की पिटाई करने लग जाता है। जब अगले की पत्नी कांजीवरम् की नई साड़ी पहिन मुहल्ले में चक्कर लगाने निकलती है, तब पड़ौसन पुरानी साड़ी पहिन अपने औसुओं से वर्तन धोने लगती है। इस तरह पड़ौसियों के बीच क्रिया-प्रतिक्रिया की आँख-मिचौनी प्रति-पल चलती रहती है!

अभी कुछ रोज पहले की बात है, एक महिला ने अपने पति से कहा-"देखो न पड़ौसी को! पिछले कुछ दिनों से अपने नए सी.डी.प्लेयर पर न जाने किस बाहियात फिल्म का बेहूदा गीत जोरों से अनवरत बजा रहा है।" "अब फिल्मी गीत है तो बेहूदा तो होना ही है" पति ने कहा, "पर जरा पता तो लगे कि गाना है कौन सा?"

"लो मचा गली में शोर पड़ौसन पकड़ी गई। ये खबर है चारों ओर पड़ौसन पकड़ी गई," पत्नी ने किंचित शर्मते हुए गुनगुनाया फिर कहा-"हाय! मुझे तो कहते-सुनते लाज आती है।"

और जैसा कि शिकायत का उद्देश्य था, पति ने तत्काल पड़ौसी को ललकारते हुए, एल.ओ.सी. अर्थात् बाउन्ड्री-वाल पर तलब किया और उन्हें जी भर लताड़ा। पड़ौसी भी हत्थे से उखड़ गया। बोला-"क्या बात करते

हो जी? जानते भी हो यह गाना है किस फिल्म का? अरे बच्चू! यह गीत महान देश प्रेमी फिल्मकार मनोजकुमार द्वारा निर्मित देश भक्ति से प्रेरित फिल्म 'जयहिंद' का है।

'हो ही नहीं सकता', पति महोदय ने पूछा—“मनोज कुमार की फिल्मों में जो गीत होते हैं उन्हें सुनकर तो भुजाएँ फड़कने लगती हैं। देश पर कुर्बान हो जाने को जी मचलने लगता है। जैसे कि 'मेरा रंग दे बसंती चोला ओ माँ ए मेरा रंग दे बसंती चोला'”

“अब होने को तो—'तेरी दो टकियाँ दी नौकरी, मेरा लक्खों दा सावन जाय रे' जैसे गीत भी मनोज कुमार की ही फिल्म में होते हैं। पर इनका अर्थ सही संदर्भ में देखना आवश्यक होता है, वरना असलियत समझ में नहीं आती। अच्छा यह बतलाइए, क्या आपने जयहिंद फिल्म देखी है?”

“जी नहीं! और आपने?”

“मैंने भी नहीं देखी। पर मैं कल्पना कर सकता हूँ। अंदाज लगा सकता हूँ कि यह गीत संभवतः हमारे किसी पड़ोसी देश की महिला शासक के संदर्भ में रचा गया होगा।”

“बेनजीर के बारे में?” पत्नी ने जो कि वार्तालाप को रोचक होते देख अब तक एल.ओ.सी. के नजदीक आ गई थी पूछा।”

“क्यों?” पड़ोसी ने तत्काल प्रति प्रश्न किया “क्या हमारे पड़ोस में एक वही महिला शासक रही है?”

“तो क्या हसीना या चन्द्रिका के बारे में होगा?”

“देखिए, राजनीति में इस तरह लांछन नहीं लगाया जाता। इसमें बात से मुकर जाने में परेशानी होती है।

इन मामलों में केवल इशारों से ही बात की जाती है।”

“तो कुछ इशारा तो कीजिए।”

“अब यों समझ लीजिए कि यह बात हमारे देश के दो प्रदेशों के बीच की भी हो सकती है। जैसे कि बंगाल की कोई प्रसिद्ध राजनेत्री यदि सत्तारूढ़ गठबंधन में शामिल हो जाय तो बिहार का कोई नेता भी यह गाना गा सकता है कि पड़ोसन पकड़ी गई।”

“ममता की बात कर रहे हैं न?”

“फिर वही बात! मैं मात्र उदाहरण दे रहा हूँ। ममता या जयललिता की बात नहीं कर रहा हूँ। कम से कम स्पष्ट रूप से तो मैं इसे स्वीकार नहीं करना चाहूँगा। हाँ! एक बात जरूर मैं ऐलानिया कहूँगा कि इस गीत का मेरे पड़ोस से कोई संबंध नहीं है।”

“तो भाई साब! यह तो बतला दीजिए कि यह सी.डी.प्लेयर आप कब, कहाँ से और कितने का खरीदा।”

जाहिर है कि पड़ोसन को गीत नहीं, बल्कि सी.डी.प्लेयर चुभ रहा था! इसलिए वह पड़ोसी को उसका आनंद उठाते सहन नहीं कर पा रही थी।

कहते हैं कि वे लोग जो इस संसार को त्याग कर, जन्म-मरण के चक्र से निकलने हेतु तपस्यालीन होना चाहते हैं, वे ऐसा करने के लिए वन में चले जाते हैं। मेरी समझ से इसका प्रमुख कारण यह होता है कि, वहाँ उन्हें तंग करने को कोई पड़ोसी नहीं होता!

7/56-अ,

मोतीलाल नेहरू नगर (पश्चिम)  
भिलाई (दुर्ग) छ.ग. - 490020

## चिन्ता नहीं, चिन्तन करो।

पं. लालचन्द्र जैन 'राकेश'

चिन्ता नागिन विषभरी, उसको छोड़ो मित्र।  
चिन्तन अमृत-कलश है, धारो परम पवित्र।  
चिन्ता ज्वाला आग की, चिन्तन जल की धार।  
चिन्तन में शांति बसे, चिन्ता बसे अँगार।  
चिन्ता निशा अमावसी, चिन्तन पूनम चंद्र।  
चिन्ता सोखे योग त्रय, चिन्तन हुलस अमंद।  
आत्म हितेच्छु जनन को, चिन्तन करे सहाय।  
चिन्ता से कुछ न मिले, ज्ञान गाँठ का जाय।  
अतः विज्ञ! गुण-दोष निधि, सकल पक्ष चिन्तन करो।  
छोड़ो द्वन्द्व तमाम, चिन्ता नहीं, चिन्तन करो।।

नेहरू चौक, गली नं. 4,  
गंजबसौदा (विदिशा) म.प्र.

## जिन पर लिखा सहारों के घर

ऋषभ समैया 'जलज'

जिन पर लिखा सहारों के घर  
वह तो निकले खारों के घर  
चहक महक मदमस्ती गुम है  
भर-मधुमास बहारों के घर  
चमक दमक से दूर रहेंगे  
नेक-नीयत खुद्दारों के घर  
दिखे नहीं घर जैसी रौनक  
समझे हैं आवारों के घर  
शीतल हवा, महक चंदन की  
मिले नहीं, अंगारों के घर  
नाव तभी कहलाती है वह  
जिसमें हों पतवारों के घर  
चाहत के चिराग रख देना  
नफरत के अँधियारों के घर

# विपत्ति में मित्र का साथ नहीं छोड़ना चाहिए

किसी गाँव में राजा और राजू नाम के दो बालक रहते थे। उनमें गहरी मित्रता थी। वे एक साथ स्कूल जाते, एक साथ खेलते। छुट्टियों के दिन साथ-साथ बिताते। जब वे दोनों बड़े हुए तो व्यापार करने लगे। व्यापार में दोनों ने खूब मेहनत की। राजा के भाग्य ने साथ दिया, जिससे राजा कुछ ही दिनों में करोड़पति सेट बन गया। इधर राजू परिश्रम तो खूब करता, किन्तु भाग्य ने उसका कभी साथ नहीं दिया। इस विषय में जब भी दोनों की कोई चर्चा चलती, तो राजू हमेशा राजा से कहता कि "लक्ष्मी हमेशा पुण्य के निमित्त से ही प्राप्त होती है। मैंने पूर्व जन्म में कोई पाप किया होगा, जिसके कारण दरिद्रता मेरा पीछा नहीं छोड़ती है।" राजा राजू के विचारों से सहमत भी होता, किन्तु उसे हतोत्साहित कभी नहीं करता। वह व्यापार के नये-नये रास्ते सुझाता और उसकी भरपूर मदद भी करता। दोनों के परस्पर सौजन्य और सहयोग को देखकर गाँववासी उनकी मित्रता की मिसालें देते।

एक दिन की बात है कि राजा और राजू व्यापार के सिलसिले में नगर जा रहे थे। चलते-चलते वे थककर चूर हो गये थे, उन्हें जोरों की भूख भी लगी थी किन्तु अभी नगर में पहुँचना संभव नहीं था, अतः दोनों ने वहीं जंगल में विश्राम करना उचित समझा। दोनों भोजन साथ में लिये थे। पास ही एक कुआँ था, वहीं से पानी छानकर लोटे में भर लिया और प्रेमपूर्वक भोजन किया। रास्ते की थकान और भोजन के उन्माद में कब उन्हें नींद आ गयी, पता ही नहीं चला।

इधर राजू सोता ही रहा, उधर राजा की नींद खुल गयी। तभी राजा ने देखा कि एक भालू उधर ही आ रहा है। भालू को अपनी ओर आता हुआ देखकर राजा तुरन्त पेड़ पर चढ़ गया और वहीं से भालू को राजू के निकट आता हुआ देखने लगा। इधर राजू की भी आँख खुल गयी, उसने देखा कि राजा पास में नहीं है, दूसरी ओर देखा तो अपने पास आता हुआ भालू दिखा। मौत को अपने समीप आता हुआ देखकर राजू को जब कुछ और नहीं सूझा तो उसने भी मौत का वरण करना इष्ट मान लिया और संयम के साथ साँस रोककर वहीं निश्चेष्ट पड़ा रहा। इधर भालू आया और राजू के कान के पास सूँघकर आगे बढ़ गया। उसके मन में क्या आया; यह राजू और पेड़ पर बैठा राजा नहीं समझ सका।

जब भालू वहाँ से चला गया, तो राजा ने पेड़ से नीचे आकर राजू से पूछा कि -"राजू, भालू ने तुम्हारे कान में क्या कहा था?" राजू ने उत्तर दिया, "भालू ने मेरे कान में कहा कि धोखेबाज मित्र का कभी विश्वास नहीं करना चाहिए। वह तुम्हें कभी भी मौत के मुँह में पहुँचा सकता है।"

डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'

राजू का उलाहना सुनकर राजा को अपनी गलती का अहसास हुआ। पश्चात्ताप में उसके आँसू बह निकले। उसने राजू से क्षमा माँगते हुए कहा कि अब वह कभी-भी विपत्ति में मित्र का साथ नहीं छोड़ेगा।

राजा की क्षमा भावना देखकर राजू भी कठोर न रह सका, उसने राजू को गले लगा लिया। उसके मन में विचार आया कि "भूल तो सबसे होती है, भूल का प्रायश्चित्त करना सबसे बड़ी महानता है।"

मेरे प्यारे बच्चो! इस कहानी से हमें शिक्षा मिलती है कि हमें कभी विपत्ति में किसी का साथ नहीं छोड़ना चाहिए तथा भूल होने पर क्षमा माँग लेनी चाहिए।

एल-65, नया इन्दिरा नगर - 'ए'  
बुरहानपुर-450331(खण्डवा) म.प्र.

## जानने योग्य बातें

1. 'मूकमाटी' (महाकाव्य) के रचयिता आचार्य श्री विद्यासागर जी हैं।
2. 'दिव्य जीवन का द्वार' कृति के लेखक मुनि श्री प्रमाणसागर जी हैं।
3. 'आत्मान्वेषी' कृति के लेखक मुनि श्री क्षमासागर जी हैं।
4. 'नग्नत्व क्यों और कैसे' कृति के लेखक मुनिपुंगव श्री सुधासागर जी हैं।
5. 'महायोगी महावीर' कृति के लेखक मुनि श्री समतासागर जी हैं।

## स्मरणीय दोहे

साँच बराबर तप नहीं, झूठ बराबर पाप ।  
जाके हिरदय साँच है, ताके हिरदय आप।।  
गाली आवत एक है, जावत होय अनेक ।  
जो गाली फेरे नहीं, रहे एक की एक ।।  
मित्र क्षमा सम जगत में, नहीं जीव का कोय।  
अरु बैरी नहिं क्रोध सम, निश्चय जानो लोय।।

## क्या आप जैन हैं ?

यदि हाँ, तो सोचें कि क्या आप प्रतिदिन देवदर्शन करते हैं? रात्रि में भोजन तो नहीं करते हैं? मुनियों की वन्दना करते हैं? किसी की निन्दा तो नहीं करते हैं? तीर्थयात्रा का भाव रखते हैं? शास्त्रों का स्वाध्याय करते हैं? यदि इनके उत्तर हाँ में हों तो आप गर्व से कहिए कि "मैं जैन हूँ।"

प्रस्तुति: डॉ. सुरेन्द्रकुमार जैन 'भारती'



## बण्डा (सागर म.प्र.) में पंचकल्याणक-गजरथ महोत्सव सम्पन्न

22 फरवरी से 28 फरवरी 2002 तक बहुप्रतीक्षित बंडा पंचकल्याणक त्रय गजरथ महोत्सव विशाल जन-सैलाब के बीच गुरुदेव आचार्य श्री विद्यासागरजी के संसंध सान्निध्य एवं आशीर्वाद से सम्पन्न हो गया। 300 जिनबिम्ब प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा, राष्ट्रीय स्तर के कार्यक्रम, आचार्यश्री की आत्मकल्याणी अमृतवाणी, सम्पूर्ण नगर की सजावट एवं जैनैतर बंधुओं के जन-सहयोग से विश्व शांति की याचना सहित बंडा नगर का महोत्सव सालों-साल याद रखा जाएगा। इसे बंडावासी भुला न पायेंगे।

22 फरवरी से 28 फरवरी 2002 तक नर से नारायण बनने की जीवट प्रस्तुति देखने के साथ-साथ शिखरसंत आचार्य श्री विद्यासागर जी के दर्शन की भावना लेकर देश के ही नहीं विदेशों से हजारों धर्मप्रेमी बंधु आये। महोत्सव के दौरान आचार्य श्री ने दया, वात्सल्य, अहिंसा एवं सद्भाव को प्रत्येक मानव के लिये अपने जीवन में उतारने का उपदेश दिया। शुरु से लेकर अंत तक श्रद्धालु जनों के आने-जाने का क्रम अनवरत चलता रहा। राष्ट्रीय स्तर के कवियों की कविताएँ, ख्याति प्राप्त संगीतकार राजेन्द्र जैन के गीत, केन्द्रीय कपड़ा मंत्री बी. धनंजय कुमार का आगमन, रिमोट से चलने वाले विमान द्वारा पुष्प वर्षा, महोत्सव के प्रमुख आकर्षण रहे।

पंचकल्याणक महोत्सव की समाप्ति के अवसर पर परमपूज्य आचार्य श्री विद्यासागर महाराज ने अपने आशीर्वचन में कहा कि सम्यक् सुख के लिये समाचीन कारण होना आवश्यक है। एकता के बिना कोई भी कार्य नहीं हो सकता है। समाज में कोई भी कार्य होता है, एकता से होता है। एकता के साथ वात्सल्य होता है। हमेशा-हमेशा मुस्कान का नाम वात्सल्य नहीं कहा जा सकता है। अपने एक लक्ष्य की ओर कठिन साधना करते रहिए, एक दिन फल मिलता है। उक्त उद्गार आचार्य श्री विद्यासागर जी महाराज ने बण्डा नगर के मंडी प्रांगण में आयोजित रविवारीय प्रवचन के दौरान व्यक्त किये।

उन्होंने कहा कि पंचकल्याणक के पूर्व, बीच में और अब विदाई समारोह वाला रविवार आया है, न्याय सिद्धांत के अनुसार कार्य उपादन और निमित्त से होते हैं। बंडा पंचकल्याणक त्रय गजरथ महोत्सव समाज में एकता के कारण ठीक ढंग से सम्पन्न हो गया। दृष्टि दोषों पर न जाये, गुणों की गवेषणा करनी चाहिये। प्रभावना के लिये धार्मिक कार्य अनिवार्य होते हैं, एकता के बिना कार्य नहीं हो सकता। पंचकल्याणक तीन

मंदिरों के थे और कृषि मंडी वाले जगह नहीं देते, तो निष्पक्ष कार्य नहीं हो पाता, यह स्थान बीच में होने से ठीक हो गया। समाज में कोई भी कार्य होता है एकता से होता है।

आचार्य श्री ने कहा कि हमने रथ बहुत स्थानों पर देखे, परन्तु बंडा में सबसे ज्यादा सुविधा यहीं पर मिली। आज तो मंडी के भीतर ही हमारी दुकान लग गई। कोई भी बात मन के अनुरूप नहीं होने से अच्छी नहीं लगती, मन चंचल होता है, मन के अभाव में कोई व्यक्ति चंचल नहीं हो सकता है। मन की चोट भी नहीं लगती है, जीवन को सर्वांग सुन्दर बनाने के लिये कष्ट सहना पड़ता है। भावना पहले होती है, प्रभावना बाद में होती है। बंडा वालों ने गजब कर दिया, कहने के लिये ज्यादा प्रशंसा तो नहीं कर रहे हैं। सागर के सामने बंडा तो एक बूँद ही है। समाज अल्प होते हुए भी इतना अधिक किया। कम समूह और कम समय में बृहद् कार्य हो सकता है। तन, मन धन का सदुपयोग धर्म की प्राप्ति के कार्यों में करना चाहिए।

वीरेन्द्र कुमार शिक्षक

बण्डा (बेलई) सागर

## राष्ट्रपति सहस्राब्दी पुरस्कार-सम्मान से सम्मानित

गत 6 फरवरी 2002 को प्रो. डॉ. राजाराम जैन आरा (बिहार) तथा मानद निदेशक, श्री कुन्दकुन्द भारती शोध संस्थान, नई दिल्ली को राष्ट्रपति भवन के अशोक सभागार में राष्ट्रपति सहस्राब्दी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। प्राकृत, जैन-विद्या एवं दुर्लभ प्राकृत-पाण्डुलिपियों के श्रमसाध्य एवं धैर्यसाध्य सम्पादन कार्यों का मूल्यांकन कर भारत सरकार ने उन्हें सम्मानित करने का गतवर्ष निर्णय लिया था। अपने क्षेत्र का भारत का यह सर्वोच्च सम्मान-पुरस्कार माना जाता है।

ध्यातव्य है कि डॉ. जैन ने वैशाली के राजकीय प्राकृत शोध संस्थान में 6 वर्षों तक सेवा कार्य कर मगध विश्व विद्यालयान्तर्गत ह.दा. जैन कॉलेज आरा (बिहार) में लगभग 30 वर्षों तक प्राकृत एवं संस्कृत के शिक्षण का कार्यकर युनिवर्सिटी प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष के रूप में जनवरी 1991 में अवकाश ग्रहण किया था। इस बीच उनके लगभग 30 ग्रन्थ तथा 250 शोध निबन्ध प्रकाशित हुए। 20 के लगभग पी-एच.डी. एवं डी. लिट् स्तर के शोध कार्यों में निर्देशन कार्य किया, साथ ही आल इण्डिया ओरियण्टल कान्फ्रेंस के प्राकृत एवं जैन विद्या विभाग की कर्नाटक विश्व विद्यालय में सन्

1976 में अध्यक्षता की, यू.पी.सी. एवं एन.सी.ई.आर.टी. दिल्ली तथा मानव संसाधन विभाग (भारत सरकार) की समितियों के मानद सदस्य भी रहे। इनके अतिरिक्त भी अनेक विश्वविद्यालयों से सम्बद्ध रहकर उन्होंने संस्कृत प्राकृत एवं अपभ्रंश विषय के विकास तथा उसे लोकप्रिय बनाने में महत्त्वपूर्ण योगदान किया है। इन उपलब्धियों के लिये डॉ. जैन को अनन्त बधाइयाँ।

गोपाल प्रसाद, व्याख्याता-प्राकृत विभाग  
ह.दा. कॉलेज, आरा (बिहार)

## अनेकान्त ज्ञानमंदिर बीना का दशम स्थापना समारोह सम्पन्न

बीना (सागर) म.प्र. सन् 1992 में प्राचीन, विलुप्त, जैन वाङ्मय के संरक्षण-संवर्द्धन के लिए स्थापित अनेकान्त ज्ञानमंदिर शोधसंस्थान, बीना का दसवाँ स्थापना दिवस समारोह 20 फरवरी 2002 को परम पूज्य गुरुवर श्री 108 सरलसागर जी महाराज के पावन आशीर्वाद से क्षु. 105 निशंकसागर जी महाराज के सान्निध्य में एवं संस्था संस्थापक ब्र. संदीप जी 'सरल' के कुशल मार्गदर्शन में कार्यक्रम आशातीत सफलता के साथ सम्पन्न हुआ।

कार्यक्रम का प्रारम्भ 19 फर. को दोप. 1:30, पर भक्तामर स्तोत्र के पाठ से हुआ। 20 फरवरी को श्रुतधाम में प्रातः 9.15 बजे सरस्वती पूजन हुई। दोपहर 2 बजे से 'श्रुत महोत्सव का कार्यक्रम ब्र. शैला दीदी के मंगलाचरण से प्रारम्भ हुआ। दीप प्रज्वलन प्रो. रतनचन्द्र जी भोपाल ने किया। 10 मंगल कलशों से माँ जिनवाणी की आरती की गई। क्षु. 105 निशंकसागर जी महाराज, ब्र. संदीप भैया जी, ब्र. महाबल जैन को शास्त्र भेंट किये गए। कार्यक्रम की अध्यक्षता प्रो. रतनचन्द्र जी भोपाल ने की। मुख्य अतिथि के रूप में आगत श्री बाबूलाल जी अशोकनगर ने अनेकान्त भवन ग्रन्थरत्नवली-3 का विमोचन किया। आमंत्रित अतिथियों में वैद्य शीलचंद जी, मुँगावली, श्री यू.के. जैन गाजियाबाद, श्री प्रभात जैन जबलपुर, श्री संतोष जैन देवरी, श्रीपाल 'दिवा' भोपाल, श्री महेन्द्र कुमार जैन पटनाबुजुर्ग आदि का भी सम्मान किया गया। मुख्य वक्ता के रूप में पधारी हुई डॉ. नीलम जैन गाजियाबाद ने अपना ओजस्वी भाषण प्रस्तुत कर सम्यक्ज्ञान के प्रचार-प्रसार के लिए समर्पित सम्पूर्ण भारत वर्ष की प्रथम पंक्ति में अपना स्थान कायम करने वाले ज्ञानमंदिर को जैन समाज की शिरमौर संस्था कहा।

अनेकान्त दर्पण अंक 4 का विमोचन श्री शीलचंद जी मुँगावली ने किया। प्रमाणनिर्णय ग्रन्थ का लोकार्पण

उदारमना व्यक्तित्व के धनी श्री संतोष कुमार बजाज देवरी (सागर) ने किया।

श्रीपाल जी 'दिवा' भोपाल, श्री बाबूलाल जी अशोकनगर ने अनेकान्त ज्ञानमंदिर को एक आदर्शपूर्ण संस्था कहा। संस्थान के मंत्री श्री पी.सी. जैन ने वर्ष की रिपोर्ट प्रस्तुत की। प्रो. रतनचन्द्र भोपाल ने अनेकान्त ज्ञानमंदिर को मोक्षमार्ग के मंदिर की उपमा दी और कहा कि आज जहाँ चारों ओर पंचकल्याणकों कर्मकाण्डों का ही बोलबाला हों, ऐसे वातावरण में ब्र. संदीप जी 'सरल' ने सबसे हटकर माँ जिनवाणी की जो उपासना करने का व्रत लिया है, वह प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय है।

क्षु. 105 निशंकसागर जी महाराज का मंगल प्रवचन हुआ। आपने ज्ञान की प्रभावना को ही सच्ची प्रभावना बतलाया।

श्रुतमहोत्सव के इस कार्यक्रम में स्थानीय जिनवाणी उपासकों के अतिरिक्त गाजियाबाद, जबलपुर, भोपाल, अशोकनगर, पिपरई, देवरी, ललितपुर, मुँगावली, गढ़ाकोटा आदि स्थानों से भी श्रावकगण पधारे। कार्यक्रम का सफल संचालन ब्र. संदीप 'सरल' जी ने किया।

## लेखकों के लिये अपूर्व अवसर

चिन्तनशील लेखकों के लिये यह जानकर प्रसन्नता होगी कि श्री दि. जैन साहित्य संस्कृति समिति के सुश्रावक श्री शिखरचन्द्र जैन, नई दिल्ली ने भ. महावीर के 2600वें जन्म कल्याण समारोह वर्ष को सार्थक बनाने हेतु भ. महावीर द्वारा प्रतिपादित 'अहिंसा' विषय पर सर्वोत्कृष्ट ग्रन्थ पर 51000/- रुपयों के पुरस्कार की घोषणा की है। यह पुस्तक मौलिक होने के साथ-साथ रोचक शैली तथा सरल भाषा में सर्वगम्य होना चाहिये।

वर्तमानकालीन विषम समस्याओं के समाधान में अहिंसा की उपयोगिता, साथ ही जैनेतर प्राच्य एवं पाश्चात्य चिन्तकों द्वारा प्रतिपादित अहिंसा की परिभाषाओं से जैन अहिंसा के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन भी उसमें अनिवार्य है। इस बात का ध्यान रखना भी आवश्यक होगा कि उसमें इतर धर्मों के प्रति छींटाकशी न हो तथा ग्रन्थ पूर्णतया निर्विवाद हो।

अनेक विद्वानों के पास सूचक पत्र प्रेषित किये जा चुके हैं। फिर भी यदि किसी कारण से उनके पास सूचना न पहुँची हो, तो निम्न पते पर पत्र लिखकर विस्तृत जानकारी मंगवा लेने की कृपा करें

श्री शिखरचन्द्र जैन  
डी-302, विवेक-विहार, नई दिल्ली- 110095

# सही पुरुषार्थ

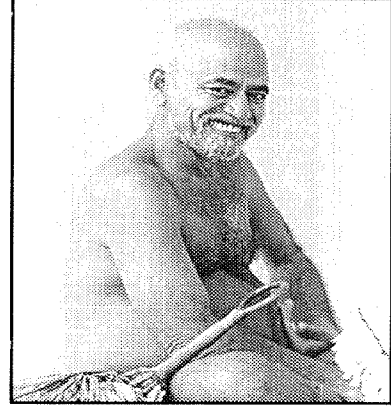
आचार्य श्री विद्यासागर जी

किसी कार्य को सम्पन्न करते समय  
अनुकूलता की प्रतीक्षा करना  
सही पुरुषार्थ नहीं है,  
कारण कि  
वह सब कुछ अभी  
राग की भूमिका में ही घट रहा है,  
और इससे  
गति में शिथिलता आती है।  
इसी भाँति  
प्रतिकूलता का प्रतिकार करना भी  
प्रकारान्तर से  
द्वेष को आहूत करना,  
और इससे  
मति में कलिलता आती है।  
कभी कभी  
गति या प्रगति के अभाव में  
आशा के पद ठण्डे पड़ते हैं,  
द्युति, साहस, उत्साह भी  
आह भरते हैं,  
मन खिन्न होता है

किन्तु

यह सब आस्थावान् पुरुष को  
अभिशाप नहीं है,  
वरन्  
वरदान ही सिद्ध होते हैं  
जो यमी, दमी  
हरदम उद्यमी है।  
और, सुनो!  
मीठे दही से ही नहीं,  
खट्टे से भी  
समुचित मन्थन हो  
नवनीत का लाभ अवश्य होता है।  
इससे यही फलित हुआ  
कि  
संघर्षमय जीवन का  
उपसंहार  
नियमरूप से  
हर्ष मय होता है, धन्य !

‘मूकमाटी’ से साभार



## मोती

सरोज कुमार

मुनिश्री

आप बार-बार कहते हैं  
अपनी आत्मा में झाँको  
स्वयं को देखो  
पहचानो !

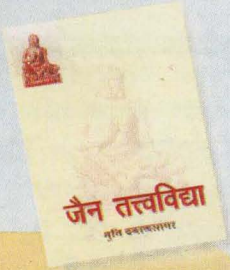
मैं बार-बार प्रयत्न करता हूँ  
पर कोई खिड़की नहीं दिखती  
कोई झरोखा नहीं मिलता  
जहाँ से भीतर झाँकूँ  
अपने को खोजूँ  
और पहचान सकूँ !

मुझे तो अब  
संदेह होने लगा है  
कि मेरे भीतर कोई है भी  
जो प्रयत्न करने पर मिल भी  
सकता है !

प्रयत्न नहीं छोड़े हैं  
पर यह भी जानता हूँ  
कि हर सीपी में  
मोती नहीं होता !

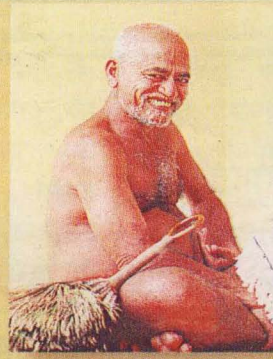
‘मनोरम’

37, पत्रकार कालोनी  
इन्दौर (म.प्र.)-452001



**जैन तत्त्वविद्या**  
मुनि उदात्तसंग्रह

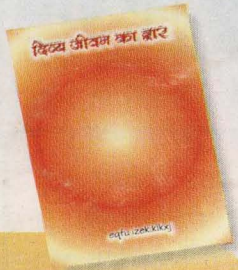
जैन तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक प्रस्तुतीकरण और सर्वांगीण विवेचन। जैन सिद्धांत का विश्वकोश  
मूल्य : 125/-



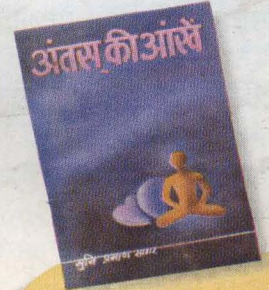
**परम पूज्य संत शिरोमणि  
108 आचार्यश्री  
विद्यासागरजी महाराज  
के परम प्रभावक शिष्य  
108 मुनिश्री  
प्रमाणसागरजी महाराज  
द्वारा रचित  
अद्भुत एवं  
ज्ञानवर्धक ग्रंथमाला**



**जैन धर्म और दर्शन की वैज्ञानिकता को उद्घाटित करनेवाला अद्वितीय ग्रन्थ**  
मूल्य : 50/-



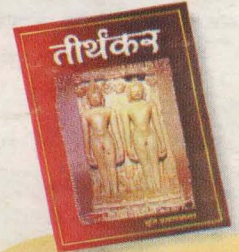
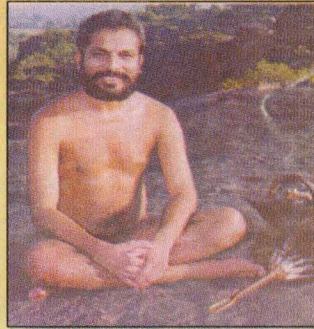
**श्रावकों के लिये दिव्य जीवन के सूत्रों का उपहार**  
मूल्य : 25/-



**सम्यग्दर्शन के आठ अंगों की मनोरम झोंकी**  
मूल्य : 15/-



**जैन सिद्धांतों की शिक्षा हेतु सरलतम पाठों का संग्रह**  
मूल्य : 10/-



**तीर्थंकर पव की महिमा और उसकी प्राप्ति के उपायों का सरस, संक्षिप्त निरूपण**  
मूल्य : 8/-

**पर्वों/उत्सवों पर विशेष रियायत सहित उपलब्ध**

**निर्ग्रन्थ फाउन्डेशन**

अहिंसा, 22, पुराना कबाड़खाना, जुमेराती, भोपाल.

फोन : 0755-541689, 542346, 579183

**प्राप्ति स्थान**

● राजेश जैन, राजेश जनरल स्टोर्स, माधवगंज, विदिशा. फोन : 34235, 64129 ● अनिलकुमार जैन, बाम्बे सागर रोडवेज, घास बाजार नागपुर (महाराष्ट्र) ● बाबूलाल सुमतकुमार जैन, अखाई वाले, अशाक नगर, म.प्र. फोन : 07543-22620 ● श्री दिगम्बर जैन उदासीन आश्रम, 584, एम.जी.मार्ग, इन्दौर (म.प्र.) फोन : 0731-545744 ● दिगम्बर जैन वर्णा गुरुकुल, पिसन हारी मडिया, जबलपुर (म.प्र.). ● विजय जैन वर्धमान कॉलोनी, सुबेदार वार्ड, सागर. फोन : 07582- 21506 ● अशोक शाकाहार, स्टेशन रोड, खुरई

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक : रतनलाल बैनाड़ा द्वारा एकलव्य ऑफसेट सहकारी मुद्रणालय संस्था मर्यादित, जोन-1, महाराणा प्रताप नगर, भोपाल (म.प्र.) से मुद्रित एवं सर्वोदय जैन विद्यापीठ 1/205, प्रोफेसर्स कॉलोनी, आगरा-282002 (उ.प्र.) से प्रकाशित।